मेसर्स ट्रांसकोर

बनाम

भारत संघ एवं एक अन्य

29 नवम्बर, 2006

[अरिजीत पसायत तथा एस. एच. कपाड़िया, न्यायमूर्तिगण]

वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 :

धारा 13(4) — बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 (संशोधन अधिनियम 30, 2004 द्वारा अंतःस्थापित) — धारा 19(1) का प्रथम परंतुक — बैंक बकाया की वसूली — 2002 के अधिनियम का आश्रय — धारा 19(1) के प्रथम परंतुक के अनुसार मूल आवेदन की वापसी — अभिनिर्धारित : यह पूर्वशर्त नहीं है — बैंक द्वारा ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अंतर्गत उपाय ग्रहण कर लेने के पश्चात भी, वह ऋण वसूली न्यायाधिकरण में लंबित आवेदन वापस लिए बिना, प्रतिभूत आस्तियों की प्राप्ति हेतु 2002 के अधिनियम का आश्रय ले सकता है — यह बैंक के विवेक पर निर्भर है — निर्वाचन का सिद्धांत लागू नहीं होता — दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 — आदेश 23, नियम 1(3)।

धाराएँ 13(4), 13(8) तथा 17(3) — प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा बकाया की वसूली — धारा 13(4) के अधीन उधारकर्ता की प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा — प्रतिभूत ऋणदाता की शक्ति — परिधि — अभिनिर्धारित : 2002 का अधिनियम गैर-न्यायनिर्णयन प्रक्रिया द्वारा कब्जा प्राप्त करने का प्रावधान करता है — यदि प्रतिभूत ऋणदाता का समस्त बकाया तथा उसके द्वारा वहन किए गए सभी व्यय, प्रभार एवं खर्च विक्रय अथवा अंतरण हेतु निर्धारित तिथि से पूर्व चुका दिए जाएँ, तो आस्ति का विक्रय अथवा अंतरण नहीं किया जाएगा — विक्रय प्रमाणपत्र जारी होने तक प्राधिकृत अधिकारी न्यायालय द्वारा नियुक्त अभिग्राही के

समान होता है, जो सांकेतिक कब्जा ले सकता है — जहाँ न्यायालयीय अभिग्राही को यह प्रतीत हो कि किसी तृतीय पक्ष का हित रात्रि-भर में सृजित किया जा सकता है, वहाँ वह डिक्री से पूर्व भी वास्तविक कब्जा ले सकता है — नियम 8 के अधीन प्राधिकृत अधिकारी को न्यायालयीय अभिग्राही से भी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं, क्योंकि संपत्ति में प्रतिभूति हित पूर्व से ही बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के पक्ष में सृजित होता है — अतः सांकेतिक तथा वास्तविक कब्जे के मध्य भेद अधिनियम तथा नियमों के संयुक्त पठन से परिलक्षित नहीं होता — प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 — नियम 8 तथा 9 — दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 — आदेश 40, नियम 1।

धाराएँ 13(4), 17(1) तथा 40 — वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन (कठिनाइयों का निराकरण) आदेश, 2004 — उधारकर्ताओं के विरुद्ध धारा 13(4) के अंतर्गत बैंकों अथवा वित्तीय संस्थाओं द्वारा की गई कार्रवाई — उधारकर्ताओं द्वारा चुनौती — संशोधन अधिनियम 30, 2004 द्वारा 11.11.2004 से संशोधित धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन — 1993 के नियमों के नियम 7 के अधीन निर्धारित **मूल्यानुसार** *न्यायालय शुल्क — उसकी वसूली — उधारकर्ताओं का मामला कि धारा 17(1) आवेदन हेतु शुल्क निर्धारित करने का प्रावधान करती है तथा 11.11.2004 के पश्चात उसके अधीन कोई नियम न बनाए जाने से 6.4.2004 का आदेश अप्रभावी हो गया और उसके आधार पर शुल्क अधिरोपित नहीं किया जा सकता — धारित : 11.11.2004 के पश्चात नियमों द्वारा शुल्क निर्धारित न किए जाने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि 11.11.2004 से पूर्व विद्यमान 2004 के आदेश के आधार पर शुल्क नहीं लगाया जा सकता — 6.4.2004 का आदेश संशोधित अधिनियम की योजना में कोई परिवर्तन नहीं करता — वह केवल कमी की पूर्ति करता है — ऋण वसूली न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993।*

बैंक ने अपीलकर्ता कंपनी से अपनी देय राशि की वसूली हेतु ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन प्रस्तुत किया। दावे का प्रतिवाद किया गया। बैंक ने मूल आवेदन में एक अंतःकालिक आवेदन प्रस्तुत कर संपत्तियों को विक्रय हेतु प्रस्तुत करने की प्रार्थना की। वर्ष 2003 में वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (एनपीए अधिनियम) की धारा 13(2) के अधीन नोटिस जारी किया गया। 11.11.2004 को बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 की धारा 19(1) में संशोधन अधिनियम संख्या 30, 2004 द्वारा परंतुक जोड़ा गया, जिसके अनुसार यदि बैंक अथवा वित्तीय संस्था ने पूर्व में एनपीए अधिनियम के अधीन कोई कार्रवाई न की हो, तो वह ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति से, उस अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने के उद्देश्य से अपना आवेदन वापस ले सकती है। तत्पश्चात बैंक ने एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) तथा प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम 8 के अधीन कब्जा सूचना जारी करते हुए यह घोषित किया कि अपीलकर्ता द्वारा राशि का भुगतान न किए जाने के कारण बैंक ने अचल संपत्तियों का कब्जा ग्रहण कर लिया है।

इन अपीलों में विचारार्थ निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न हुए :

(i) क्या बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 की धारा 19(1) के प्रथम परंतुक (संशोधन अधिनियम संख्या 30, 2004 द्वारा अंतःस्थापित) के अनुसार मूल आवेदन की वापसी, वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 का आश्रय लेने के लिए पूर्वशर्त है।

(ii) क्या एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अंतर्गत उधारकर्ता की प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने की शक्ति में अचल संपत्ति का वास्तविक कब्जा लेने की शक्ति भी सम्मिलित है।

(iii) क्या एनपीए अधिनियम के अधीन कोई नियम न बनाए जाने की स्थिति में, धारा 17(1) के अधीन आवेदन पर ऋण वसूली न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 में निर्धारित मूल्याधारित न्यायालय शुल्क देय है?

बैंकों/वित्तीय संस्थाओं की अपील/अंतःकालिक आवेदन स्वीकार करते हुए तथा उधारकर्ताओं की अपील/अंतःकालिक आवेदन निरस्त करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया : 1.1. बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में लंबित मूल आवेदन की वापसी, वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 का आश्रय लेने के लिए पूर्वशर्त नहीं है। यह बैंक अथवा वित्तीय संस्था के विवेक पर निर्भर है कि किन मामलों में वह आवेदन वापस लेने की अनुमति हेतु प्रार्थना करे तथा किन मामलों में ऐसी अनुमति के लिए आवेदन न करे। [825-घ-ङ]

1.2. एनपीए अधिनियम का अधिनियमन प्रतिभूति के त्वरित प्रवर्तन हेतु किया गया है। यह अधिनियम बैंक/वित्तीय संस्था में निहित अधिकारों के प्रवर्तन से संबंधित है। यह अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि प्रतिभूति हित बैंक/वित्तीय संस्था में निहित है। एनपीए अधिनियम की धारा 5 तथा धारा 9 भी बैंकों/वित्तीय संस्थाओं की परिसंपत्तियों के मूल्य के संरक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ऋण की त्वरित वसूली महत्वपूर्ण है। यही ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम तथा एनपीए अधिनियम दोनों का उद्देश्य है। किन्तु एनपीए अधिनियम के अधीन बैंकों/वित्तीय संस्थाओं को ऐसी शक्ति प्रदान की गई है, जो ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम में उपलब्ध नहीं है, अर्थात् प्रतिभूत हित को प्रतिभूतिकरण कंपनी/परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को समनुदेशित करने की शक्ति। जिन मामलों में उधारकर्ता ने बैंक/वित्तीय संस्था से वित्तपोषण प्राप्त कर कोई परिसंपत्ति खरीदी हो, वहाँ बैंक/वित्तीय संस्था को ऋणदाता माना जाता है तथा समनुदेशन के पश्चात प्रतिभूतिकरण

कंपनी/परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी ऋणदाता बैंक/वित्तीय संस्था के स्थान पर आ जाती है और उधारकर्ता से ऋण राशि की वसूली कर सकती है। [822-एफ-एच; 823-ए]

स्नेल्स इक्विटी, इकतीसवाँ संस्करण, पृष्ठ 777, उद्धृत।

1.3. जब धारा 13(4) प्रतिभूत परिसंपत्तियों अथवा उधारकर्ता के व्यवसाय के प्रबंधन का कब्जा लेने की बात करती है, तो उसका कारण यह है कि उधारकर्ता द्वारा गिरवी, आबंध, बंधक अथवा भार द्वारा सुरक्षित ऋण ग्रहण करते समय बैंक/वित्तीय संस्था के पक्ष में एक अधिकार सृजित किया जाता है। समन्यायिक हित बैंक/वित्तीय संस्था में निहित होता है, न कि उधारकर्ता में। अतः पुनर्भुगतान के दायित्व के अतिरिक्त उधारकर्ता यह भी स्वीकार करता है कि वह आच्छादन मार्जिन तथा प्रतिभूति के मूल्य को इस प्रकार बनाए रखेगा कि बैंक/वित्तीय संस्था के अभिलेखों में परिसंपत्ति एवं देयता के मध्य असंगति उत्पन्न न हो। यह दायित्व पुनर्भुगतान के दायित्व से पृथक एवं भिन्न है। उधारकर्ता का यही पूर्वोक्त दायित्व एनपीए अधिनियम के प्रावधानों को आकर्षित करता है, जो धारा 13(4) में निर्दिष्ट उपायों द्वारा उसके प्रवर्तन का प्रयत्न करता है। ऐसे उपाय ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम में परिकल्पित नहीं हैं। अतः यह कहना गलत है कि दोनों अधिनियम समानांतर उपचार प्रदान करते हैं। ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध उपचार, एनपीए अधिनियम की तुलना में सीमित है, क्योंकि एनपीए अधिनियम प्राप्तियों के अधिग्रहण एवं परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को समनुदेशन का प्रावधान करता है तथा बैंकों/वित्तीय संस्थाओं को कब्जा लेने अथवा प्रबंधन अपने हाथ में लेने का अधिकार देता है, जो ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम में नहीं है। इसी कारण एनपीए अधिनियम को अतिरिक्त उपचार (धारा 37) माना गया है, जो ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के प्रतिकूल नहीं है। [823-ई-एफ; 824-ए-डी]

1.4. एनपीए अधिनियम का अधिनियमन उन वित्तीय परिसंपत्तियों में निहित हित के प्रवर्तन हेतु किया गया है, जो पक्षकारों के मध्य अनुबंध, सामान्य विधिक सिद्धांतों अथवा

विधि के संचालन के कारण बैंक/वित्तीय संस्था की होती हैं। एनपीए अधिनियम की धारा 13 का मूल उद्देश्य गैर-न्यायनिर्णयन प्रक्रिया द्वारा वसूली करना है। इस अधिनियम के अंतर्गत "प्रतिभूत परिसंपत्ति" वह परिसंपत्ति है, जिसमें उधारकर्ता द्वारा बैंक/वित्तीय संस्था के पक्ष में हित सृजित किया गया हो, और उसी आधार पर अधिनियम गैर-न्यायनिर्णयन प्रक्रिया द्वारा उस प्रतिभूति हित का प्रवर्तन करता है। मूलतः यह अधिनियम प्रतिभूत ऋणदाता के अधिकारों से संबंधित है। यह अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि देनदार न केवल ऋण चुकाने में विफल रहा है, बल्कि उसने मार्जिन स्तर तथा प्रतिभूति के मूल्य को बनाए रखने में भी विफलता दिखाई है। देनदार का यही दूसरा दायित्व एनपीए अधिनियम की प्रयोज्यता को आकर्षित करता है। इसी कारण धारा 13(1) तथा 13(2) इस आधार पर निर्मित हैं कि बैंक/वित्तीय संस्था में निहित प्रतिभूति हित का न्यायालय/न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना शीघ्र प्रवर्तन आवश्यक है; उधारकर्ता की देयता परिपक्व हो चुकी है तथा पुनर्भुगतान में चूक के कारण बैंक के अभिलेखों में उसका खाता अकार्यशील हो गया है। अधिनियम यह घोषित करता है कि प्रवर्तन गैर-न्यायनिर्णयन प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है तथा उक्त परिस्थितियों में प्रतिभूत ऋणदाता के अधिकारों पर विद्यमान सभी अवरोधों को समाप्त करता है। [824-जी-एच; 825-ए-डी]

1.5. ऋण वसूली न्यायाधिकरण एक न्यायाधिकरण है; वह विधि की सृष्टि है। उसमें वे अंतर्निहित शक्तियाँ नहीं हैं जो दीवानी न्यायालयों में होती हैं। दीवानी प्रक्रिया संहिता का आदेश 23 नियम 1(3) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करता है कि जहाँ न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि वाद के विषय-वस्तु अथवा दावे के किसी भाग के संबंध में नया वाद संस्थित करने हेतु पर्याप्त आधार विद्यमान हैं, वहाँ वह उपयुक्त शर्तों पर वादी को संपूर्ण वाद अथवा दावे के उस भाग को वापस लेने तथा उसके संबंध में नया वाद संस्थित करने की स्वतंत्रता प्रदान कर सकता है। आदेश 23 नियम 1(4)(ख) के अनुसार, जहाँ वाद न्यायालय की अनुमति के बिना वापस लिया जाता है, वहाँ वादी उसी विषय-वस्तु के संबंध में नया वाद

संस्थित करने से वर्जित होगा। आदेश 23 नियम 2 यह उपबंधित करता है कि न्यायालय की अनुमति से संस्थित नया वाद परिसीमा की गणना से मुक्त नहीं होगा तथा वादी पर परिसीमा विधि उसी प्रकार लागू होगी, मानो प्रथम वाद कभी संस्थित ही न किया गया हो। आदेश 23 नियम 3 समझौते से वादों के निपटान से संबंधित है। इसके अनुसार, जहाँ न्यायालय के समक्ष यह सिद्ध हो जाए कि वाद पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से किसी वैध समझौते अथवा सुलह द्वारा समायोजित हो गया है अथवा प्रतिवादी ने वाद की विषय-वस्तु के संपूर्ण अथवा किसी भाग के संबंध में वादी को संतुष्ट कर दिया है, वहाँ न्यायालय ऐसे समझौते, सुलह अथवा संतुष्टि को अभिलिखित करेगा तथा उसके अनुरूप डिक्री पारित करेगा। [825-डी-जी]

1.6. ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) में प्रथम तथा तृतीय परंतुक जोड़ने का उद्देश्य ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, एनपीए अधिनियम तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के प्रावधानों का समन्वय करना था। मान लीजिए कि सावधि ऋण, साख सुविधा तथा आबंध खाते के आधार पर किसी राशि की वसूली हेतु ऋण वसूली न्यायाधिकरण में मूल आवेदन प्रस्तुत किया गया। मूल आवेदन प्रस्तुत होने के पश्चात न्यायाधिकरण में अत्यधिक लंबित मामलों के कारण उसका निस्तारण नहीं हो सका और इस बीच बैंक को यह ज्ञात हुआ कि तीन खातों में से एक खाता अवमानक अथवा हानि-खाता बन गया है। ऐसी स्थिति में बैंक ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति के साथ अथवा उसके बिना एनपीए अधिनियम का आश्रय ले सकता है। यह तथ्य दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता कि वापसी अथवा अनुमति हेतु आवेदन के निस्तारण में भी समय लगता है। अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के कारण गिरवी रखी गई संपत्ति/परिसंपत्ति का मूल्य प्रतिदिन घटता रहता है। यदि उधारकर्ता अतिरिक्त परिसंपत्ति उपलब्ध नहीं कराता तथा गिरवी परिसंपत्ति का मूल्य निरंतर घटता जाता है, तो उसी सीमा तक खाता अकार्यशील हो जाता है। अतः बैंक/वित्तीय संस्था के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह धारा 13(4) में वर्णित उपायों में से किसी एक को अपनाकर शीघ्रता से एनपीए अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही

करे। इसके अतिरिक्त, आदेश 23 दीवानी प्रक्रिया संहिता सामान्य विधि के अस्वीकृत वाद सिद्धांत का अपवाद है; इसी कारण धारा 19(1) का परंतुक आवश्यक हो गया। [825-एच; 826-ए-डी]

मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, [2004] 4 एससीसी 311, उद्धृत।

1.7. निर्वाचन सिद्धांत के तीन तत्व हैं, दो या अधिक उपचारों का अस्तित्व; उन उपचारों के मध्य असंगति, तथा उनमें से किसी एक का चयन। यदि इन तीनों में से कोई एक तत्व अनुपस्थित हो, तो यह सिद्धांत लागू नहीं होगा। यदि वस्तुतः केवल एक ही उपचार उपलब्ध हो, तो निर्वाचन सिद्धांत लागू नहीं होता। वर्तमान मामले में एनपीए अधिनियम, ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम का अतिरिक्त उपचार है। दोनों मिलकर एक ही उपचार का निर्माण करते हैं; अतः निर्वाचन सिद्धांत लागू नहीं होता। उपचारों के निर्वाचन का सिद्धांत केवल तब लागू होता है जब वादकारी के समक्ष एक ही समय में दो या अधिक सहअस्तित्वशील उपचार उपलब्ध हों, जो परस्पर प्रतिकूल एवं असंगत हों। किसी भी स्थिति में यहाँ दोनों उपचारों के मध्य न तो प्रतिकूलता है और न ही असंगति; अतः निर्वाचन सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं है। [824-डी-एफ]

अमेरिकन ज्यूरिस्प्रूडेंस द्वितीय, खंड 25, पृष्ठ 652; *स्नेल्स इक्विटी,* इकतीसवाँ संस्करण, पृष्ठ 119, संदर्भित।

2.1. "कब्जा" शब्द एक सापेक्ष अवधारणा है। यह कोई निरपेक्ष अवधारणा नहीं है। उन प्रतिभूतियों, जिनके द्वारा ऋणदाता संबंधित संपत्ति का स्वामित्व अथवा उसमें हित प्राप्त करता है (बंधक), तथा उन प्रतिभूतियों, जिनमें ऋणदाता न तो संपत्ति में कोई हित प्राप्त करता है और न ही उसका कब्जा, बल्कि संपत्ति को ऋण की संतुष्टि हेतु विनियोजित किया जाता है (भार), के बीच एक वैचारिक भेद है। मूलतः एनपीए अधिनियम प्रथम प्रकार की प्रतिभूतियों से संबंधित है, जिनमें प्रतिभूत ऋणदाता अर्थात् बैंक/वित्तीय संस्था संबंधित

संपत्ति में हित प्राप्त करता है। यही कारण है कि एनपीए अधिनियम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के हस्तक्षेप को निष्कासित करता है। [827-एफ-एच]

2.2. एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) इस आधार पर कार्य करती है कि उधारकर्ता, जो दायित्वग्रस्त है, धारा 13(2) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपने दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा है, जिससे प्रतिभूत ऋणदाता को धारा 13(4) में निर्दिष्ट उपायों में से किसी एक का आश्रय लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, अर्थात् प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा लेना, जिसमें पट्टे, समनुदेशन अथवा विक्रय द्वारा अंतरण का अधिकार भी सम्मिलित है, ताकि प्रतिभूत परिसंपत्तियों का वास्तविकीकरण किया जा सके। धारा 13(4-क) में केवल "कब्जा" शब्द का प्रयोग किया गया है। उपधारा (4-क) में कोई द्विभाजन नहीं है। [828-ए-बी]

2.3. एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) अपील के अधिकार से संबंधित है। धारा 17(3) यह उपबंधित करती है कि यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण, अपीलीय प्राधिकारी के रूप में, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का परीक्षण करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा धारा 13(4) के अंतर्गत अपनाए गए किसी उपाय का पालन अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं किया गया है, तो वह आदेश द्वारा ऐसे उपाय को अवैध घोषित कर सकता है तथा परिणामस्वरूप उधारकर्ता को पुनः कब्जा दिला सकता है और उसके व्यवसाय का प्रबंधन भी पुनर्स्थापित कर सकता है। अतः धारा 13(4) तथा धारा 17(3) की योजना से यह स्पष्ट है कि यदि उधारकर्ता को अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं बेदखल किया गया है, तो ऋण वसूली न्यायाधिकरण *पूर्ववर्ती स्थिति* को पुनर्स्थापित कर सकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि विक्रय की पुष्टि से पूर्व कब्जा ले लिए जाने पर उधारकर्ता का विवाद के न्यायनिर्णयन का अधिकार समाप्त हो जाता है। एनपीए अधिनियम गैर-न्यायनिर्णयन प्रक्रिया द्वारा कब्जा प्राप्त करने का प्रावधान करता है; अतः यह

कहना कि बिना न्यायनिर्णयन के उधारकर्ता के अधिकार समाप्त हो जाएंगे, त्रुटिपूर्ण होगा। नियम 8 अचल प्रतिभूत परिसंपत्तियों के विक्रय से संबंधित है। [828-ई-एच; 829-ए]

2.4. धारा 13(8) के अधीन यदि प्रतिभूत ऋणदाता की संपूर्ण देय राशि, उसके द्वारा वहन की गई समस्त लागत, प्रभार एवं व्यय सहित, विक्रय अथवा अंतरण हेतु नियत तिथि से पूर्व अदा कर दी जाती है, तो परिसंपत्ति का विक्रय अथवा अंतरण नहीं किया जाएगा। धारा 13(8) में उल्लिखित लागत, प्रभार एवं व्यय में वे लागत, प्रभार एवं व्यय भी सम्मिलित होंगे, जो अधिकृत अधिकारी नियम 8(4) के अधीन प्रतिभूत परिसंपत्ति के संरक्षण एवं सुरक्षा हेतु उसके विक्रय अथवा निस्तारण तक वहन करता है। इस प्रकार नियम 8 विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने तथा नियम 9 के अधीन कब्जा सौंपे जाने से पूर्व की अवस्था से संबंधित है। विक्रय प्रमाणपत्र जारी होने तक अधिकृत अधिकारी दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 40 नियम 1 के अधीन नियुक्त न्यायालयीय अभिरक्षक के समान होता है। न्यायालयीय अभिरक्षक प्रतीकात्मक कब्जा ले सकता है तथा उपयुक्त मामलों में, जहाँ उसे यह प्रतीत हो कि रात्रि के भीतर किसी तृतीय पक्ष का हित सृजित किया जा सकता है, वह डिक्री पारित होने से पूर्व भी वास्तविक कब्जा ले सकता है। नियम 8 के अधीन अधिकृत अधिकारी की शक्तियाँ न्यायालयीय अभिरक्षक से भी अधिक हैं, क्योंकि संपत्ति में प्रतिभूत हित पहले से ही बैंक/वित्तीय संस्था के पक्ष में सृजित हो चुका होता है। उस हित का संरक्षण आवश्यक है। इसी कारण नियम 8 यह उपबंधित करता है कि नियम 9 के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र जारी होने तक अधिकृत अधिकारी प्रतिभूत परिसंपत्ति के संरक्षण हेतु ऐसे कदम उठाएगा, जिन्हें वह उपयुक्त समझे। यह सुस्थापित है कि तृतीय पक्ष हित अनेक मामलों में रातोंरात सृजित कर दिए जाते हैं और ऐसे तृतीय पक्ष प्रायः बिना सूचना के मूल्य देकर क्रय करने वाले *सद्भावनापूर्ण* क्रेता होने का प्रतिरक्षण ग्रहण कर लेते हैं। नियम 8 तथा नियम 9 का उद्देश्य ऐसे विवादों से बचना है। इन परिस्थितियों में प्रतीकात्मक कब्जा तथा वास्तविक

कब्जा के मध्य किया गया द्विभाजन एनपीए अधिनियम तथा वर्ष 2002 के नियमों की योजना में स्थान नहीं पाता। [829-बी-एफ]

3.1. एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही से व्यथित उधारकर्ता, विहित शुल्क सहित, अधिकारिता रखने वाले ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। इसकी हाशिया टिप्पणी इसे अपील का अधिकार बताती है। तथापि, धारा 17(1) की हाशिया टिप्पणी उसके वास्तविक पाठ एवं विषयवस्तु को नियंत्रित नहीं कर सकती, क्योंकि धारा 17(1) स्पष्ट रूप से यह उपबंधित करती है कि धारा 13(4) में वर्णित किसी भी उपाय से व्यथित उधारकर्ता ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। वास्तव में, धारा 17(1) का परंतुक यह इंगित करता है कि उधारकर्ता द्वारा आवेदन प्रस्तुत किए जाने के लिए विभिन्न प्रकार के शुल्क विहित किए जा सकते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। धारा 13(4) के अंतर्गत अपनाए गए विभिन्न उपाय, जैसे व्यवसाय के प्रबंधन का अधिग्रहण, तथा प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा वित्तीय परिसंपत्तियों का कब्जा लिया जाना, भिन्न प्रकृति के हैं और उनके लिए भिन्न शुल्क निर्धारित किए जा सकते हैं। प्रत्येक उपाय के लिए उधारकर्ता-आवेदक से पृथक शुल्क लिया जा सकता है। उक्त परंतुक यह इंगित करता है कि धारा 17(1) के अधीन न्यायाधिकरण मूल अधिकारिता का प्रयोग करता है और इसलिए शुल्क के संदर्भ में मूल अथवा अपीलीय अधिकारिता की शब्दावली अप्रासंगिक है। [831-ए-डी]

3.2. एनपीए अधिनियम की धारा 40 के अधीन केंद्र सरकार द्वारा जारी वर्ष 2004 के आदेश में यह उपबंधित किया गया है कि एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत करने हेतु देय शुल्क, *आवश्यक परिवर्तनों सहित*, वर्ष 1993 के नियमों के नियम 7 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित शुल्क के समान होगा। *आवश्यक परिवर्तनों सहित* शब्द यह इंगित करता

है कि धारा 13(4) के अधीन प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा की गई कार्यवाही को चुनौती देते हुए एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत करने वाले उधारकर्ता द्वारा देय शुल्क के निर्धारण हेतु वही मानदंड अपनाया जाएगा। उधारकर्ताओं की यह दलील कि संशोधित धारा 17(1) आवेदन हेतु शुल्क विहित किए जाने का प्रावधान करती है और 11.11.2004 के पश्चात एनपीए अधिनियम के अधीन कोई नियम नहीं बनाए गए, इसलिए 6.4.2004 के आदेश के अधीन शुल्क नहीं लिया जा सकता, क्योंकि उनके अनुसार संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 के लागू होने के पश्चात उक्त आदेश प्रभावहीन हो गया, स्वीकार नहीं की जा सकती। केवल इस कारण कि 11.11.2004 के पश्चात नियमों द्वारा शुल्क निर्धारित नहीं किया गया, यह नहीं कहा जा सकता कि 11.11.2004 से पूर्व विद्यमान वर्ष 2004 के आदेश के आधार पर शुल्क नहीं लिया जा सकता। [831-डी-जी]

3.3. वर्ष 2004 का आदेश एक कमी की पूर्ति, अर्थात् शुल्क अधिरोपण, के उद्देश्य से जारी किया गया था। ऐसे शुल्क अधिरोपण से एनपीए अधिनियम की प्रकृति और परिधि में कोई परिवर्तन नहीं होता। वर्ष 2004 का आदेश एनपीए अधिनियम के अधिनियमन के पश्चात जारी किया गया था। संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 द्वारा धारा 17(1) में कुछ संशोधन किए गए। तथापि, 6.4.2004 का आदेश किसी भी प्रकार से संशोधित अधिनियम की योजना को परिवर्तित नहीं करता। वह केवल विद्यमान कमी की पूर्ति करता है और इसलिए वर्ष 2004 का आदेश संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 के पश्चात भी तब तक प्रभावी रहेगा, जब तक एनपीए अधिनियम की धारा 2(स) के अधीन नियम विहित नहीं कर दिए जाते। [834-सी-ई]

माडेवा उपेन्द्र सिनाई एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, पर अवलंबन।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मस्तान एवं एक अन्य, **[2006] 2 एससीपी 641 तथा** *आंध्र प्रदेश राज्य वित्तीय निगम बनाम मेसर्स गार री-रोलिंग मिल्स एवं एक अन्य,* **[1994] 2 एससीसी 647, विभेदित।**

मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, **[2004] 4 एससीसी 311, संदर्भित।**

दीवानी अपीलीय अधिकारिता : दीवानी अपील संख्या 3228/2006।

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 1565/2005 में दिनांक 27.07.2005 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

साथ में

दीवानी अपील संख्याएँ 1374/2006, 2841/2006, 3225/2006, 3226/2006 तथा 908/2006।

सोली जे. सोराबजी, रंजीत कुमार, सी. ए. सुंदरम, के. वी. विश्वनाथन, अतुल कुमार सिन्हा, बी. रघुनाथ, राजीव कुमार, देवेन्द्र सिंह, गौतम अवस्थी, डी. महेश बाबू, हिमांशु मुंशी, सुश्री जे. एस. वाड, आशीष वाड, नीरज कुमार, अरविन्द गुप्ता (जे. एस. वाड एंड कंपनी की ओर से), एस. एस. राय, राखी राय, ध्रुव मेहता, हर्षवर्धन झा, यशराज देओरा तथा मनोज मेहता (मेसर्स के. एल. मेहता की ओर से) — अपीलकर्ता की ओर से।

के. एन. भट्ट, राजीव शकधर, डी. डेव, के. एन. बालगोपाल, अजीत पुदुस्सेरी, अविनाश कुमार, के. विजयन, राशी मल्होत्रा, आई. बिष्णु (मेसर्स सुरेश ए. श्रॉफ एंड कंपनी की ओर से), रमेश सिंह, नीना गुप्ता, सुश्री श्वेता चड्ढा, आकांक्षा, ए. के. जायसवाल, राजेश के. शर्मा, शालू शर्मा, सेंथिल जगदीशन तथा ए. पी. मोहंती — उत्तरदाताओं की ओर से।

पंकज गुप्ता, प्रमोद दयाल, एन. सी. साहनी तथा वाई. पी. ढींगरा — हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय जिनके द्वारा प्रदत्त

कपाड़िया, न्यायमूर्ति लोक महत्व का एक संक्षिप्त प्रश्न विचारार्थ उपस्थित हुआ है, अर्थात् क्या ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 की धारा 19(1) के प्रथम परंतुक (संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 द्वारा जोड़ा गया) के अनुसार मूल आवेदन की

वापसी, वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षेप में "एनपीए अधिनियम") का आश्रय लेने की पूर्वशर्त है।

दीवानी अपील संख्या 3228/2006 के तथ्य :

चूँकि उपर्युक्त प्रश्न अनेक वादों में उत्पन्न हुआ है, सुविधा की दृष्टि से हम संक्षेप में दीवानी अपील संख्या 3228/2006 के तथ्यों का उल्लेख करते हैं, जिसमें मेसर्स ट्रांसको अपीलकर्ता है।

मार्च, 1999 में इंडियन ओवरसीज़ बैंक (इसके पश्चात "बैंक") द्वारा मेसर्स ट्रांसको, वर्तमान अपीलकर्ता, से देय राशि की वसूली हेतु चेन्नई स्थित ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन संख्या 354/1999 प्रस्तुत किया गया। दावे का प्रतिवाद किया गया। उक्त मूल आवेदन में बैंक द्वारा संपत्तियों को विक्रय हेतु प्रस्तुत करने के लिए एक अंतःकालिक आवेदन भी दायर किया गया। वह अंतर्वर्ती आवेदन आज भी लंबित है।

दिनांक 06.01.2003 को एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन एक सूचना जारी की गई। दिनांक 11.11.2004 को ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) में संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 द्वारा निम्नलिखित परंतुक जोड़े गए :

> "परंतु यह कि बैंक अथवा वित्तीय संस्था, ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति से, उसके समक्ष किए गए आवेदन पर, चाहे वह प्रतिभूति हित प्रवर्तन तथा ऋण वसूली विधि (संशोधन) अधिनियम, 2004 के पूर्व अथवा पश्चात प्रस्तुत किया गया हो, वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) के अधीन कार्यवाही करने के प्रयोजन से, अपने आवेदन को वापस ले सकती है, यदि उक्त अधिनियम के अधीन पूर्व में कोई कार्यवाही न की गई हो :
>
> परंतु यह भी कि प्रथम परंतुक के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण से आवेदन वापसी की अनुमति प्राप्त करने हेतु किया गया कोई भी आवेदन यथासंभव

शीघ्रता से विचारित किया जाएगा तथा आवेदन की तिथि से तीस दिनों के भीतर उसका निस्तारण किया जाएगा :

परंतु यह भी कि यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण इस उपधारा के अधीन दायर आवेदन को वापस लेने की अनुमति देने से इंकार करता है, तो वह उसके कारण अभिलिखित करते हुए उपयुक्त आदेश पारित करेगा।"

दिनांक 08.01.2005 को उक्त बैंक ने वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (इसके पश्चात "एनपीए अधिनियम") की धारा 13(4) सहपठित प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 (इसके पश्चात "वर्ष 2002 के नियम") के नियम 8 के अधीन कब्जा सूचना जारी की, जिसमें यह कहा गया कि दिनांक 06.01.2003 की सूचना द्वारा वर्तमान अपीलकर्ता (मेसर्स ट्रांसको) को लगभग 4.15 करोड़ (लगभग) रुपये की राशि, ब्याज सहित, साठ दिनों के भीतर चुकाने के लिए कहा गया था; अपीलकर्ता उक्त राशि चुकाने में विफल रहा; प्रतिभूकार को भी सूचना दी गई; बैंक ने सूचना की अनुसूची में वर्णित अचल संपत्तियों पर कब्जा कर लिया है; तथा अपीलकर्ता और प्रतिभूकार को निर्देशित किया गया कि वे उन अचल संपत्तियों के संबंध में कोई व्यवहार न करें। उक्त कब्जा सूचना द्वारा सामान्य जनता को भी सूचित किया गया कि वे सूचना में वर्णित संपत्तियों के संबंध में कोई व्यवहार न करें, क्योंकि वे उपर्युक्त राशि, ब्याज तथा व्यय की वसूली हेतु बैंक के भाराधिकार के अधीन हैं। उक्त अचल संपत्तियों को नीलामी हेतु प्रस्तुत किया गया। तथापि, लंबित दीवानी अपील के दौरान नीलामी विक्रय की पुष्टि पर स्थगनादेश दे दिया गया।

जहाँ तक वर्तमान अपीलकर्ता मेसर्स ट्रांसको का संबंध है, उसका तर्क यह है कि प्रत्यर्थी-बैंक (इंडियन ओवरसीज़ बैंक) ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के उपर्युक्त परंतुक के अधीन लंबित मूल आवेदन संख्या 354/1999 के संबंध में न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना एनपीए अधिनियम का आश्रय नहीं ले सकता

था। अपीलकर्ता का कहना है कि 11.11.2004 को उक्त परंतुक जोड़े जाने से पूर्व बैंक ने एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन कारण बताओ सूचना जारी की थी; दिनांक 06.01.2003 की सूचना मात्र कारण बताओ सूचना थी और ऐसी सूचना धारा 19(1) के प्रथम परंतुक के अर्थ में "कार्यवाही" नहीं मानी जा सकती। संक्षेप में, प्रथम परंतुक यह उपबंधित करता है कि बैंक अथवा वित्तीय संस्था, ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति से, अपने द्वारा किए गए आवेदन पर, संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 से पूर्व या पश्चात प्रस्तुत मूल आवेदन को एनपीए अधिनियम, 2002 के अधीन कार्यवाही करने के उद्देश्य से वापस ले सकती है, *यदि उस अधिनियम के अधीन पूर्व में कोई कार्यवाही न की गई हो*। उधारकर्ता का तर्क है कि बैंक द्वारा 06.01.2003 को जारी सूचना केवल कारण बताओ सूचना थी और ऐसी सूचना उक्त परंतुक के अर्थ में "कार्यवाही" नहीं थी। परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता के अनुसार, बैंक पर यह वैधानिक दायित्व था कि वह ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन संख्या 354/1999 की वापसी हेतु आवेदन प्रस्तुत करे। अपीलकर्ता का कहना है कि वर्तमान मामले में बैंक ने उक्त परंतुक का अनुपालन नहीं किया और इसलिए बैंक के प्राधिकृत अधिकारी द्वारा धारा 13(4) के अधीन दिनांक 08.01.2005 को जारी कब्जा सूचना/आदेश अवैध, विधि-विरुद्ध तथा निरस्त किए जाने योग्य है, क्योंकि धारा 19(1) के उक्त परंतुक के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति/अनुज्ञा प्राप्त किए बिना बैंक एनपीए अधिनियम का आश्रय नहीं ले सकता था।

इस स्तर पर यह उल्लेखनीय है कि हमारे समक्ष उपस्थित बैंकों का यह तर्क है कि उक्त परंतुक एक सक्षमकारी उपबंध है; बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को ऋण वसूली का स्वतंत्र अधिकार प्राप्त है; एनपीए अधिनियम के अधिनियमन का उद्देश्य उनके ऋण वसूली के अधिकार पर विद्यमान सभी बंधनों को समाप्त करना था, जो पूर्व में संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (इसके पश्चात "संपत्ति अंतरण अधिनियम") की धाराओं 69 और 69क के रूप में विद्यमान थे; और परिणामस्वरूप एनपीए अधिनियम का आश्रय लेना अथवा न लेना

बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के विकल्प पर निर्भर था। बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के अनुसार वे ऋण वसूली न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं थे और उक्त परंतुक एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने की कोई पूर्वशर्त नहीं है।

प्रतिभूतिकरण क्या है?

बैंकों तथा ऋण संस्थाओं के ऋण जोखिमों के प्रतिभूतिकरण में ऋणों/अग्रिमों की बकाया राशियों का अंतरण तथा उन्हें हस्तांतरणीय एवं व्यापार योग्य प्रतिभूतियों के रूप में संरचित करना सम्मिलित होता है।

श्री जोएल टेल्पनर ने प्रतिभूतिकरण को संक्षेप में निम्न प्रकार परिभाषित किया है :

"प्रतिभूतिकरण एक वित्तीय साधन है। इसमें परिसंपत्तियों और प्रतिभूतियों का सृजन, संयोजन तथा पुनःसंयोजन सम्मिलित होता है।"

बेसल समझौता-द्वितीय ने प्रतिभूतिकरण को व्यापक दृष्टिकोण से इस प्रकार वर्णित किया है : "पारंपरिक प्रतिभूतिकरण वह संरचना है जिसमें आधारभूत जोखिमों के समूह से प्राप्त नकदी प्रवाह का उपयोग कम से कम दो पृथक स्तरों वाली जोखिम स्थितियों अथवा श्रेणियों की सेवा हेतु किया जाता है, जो ऋण जोखिम की विभिन्न मात्राओं को प्रतिबिंबित करती हैं। निवेशकों को किया जाने वाला भुगतान उन निर्दिष्ट आधारभूत जोखिमों के निष्पादन पर निर्भर करता है, न कि उन जोखिमों को उत्पन्न करने वाली इकाई के दायित्व पर।"

मानक परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण के संदर्भ में भारतीय रिज़र्व बैंक ने प्रतिभूतिकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है "एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी एक निष्पादित परिसंपत्ति अथवा निष्पादित परिसंपत्तियों के समूह का विक्रय किया जाता है..."

एनपीए अधिनियम, 2002 के अधिनियमन के कारण :

एनपीए अधिनियम, 2002 का अधिनियमन वित्तीय परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित के प्रवर्तन को विनियमित करने और उससे संबद्ध विषयों के

लिए किया गया है। एनपीए अधिनियम बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को दीर्घकालिक परिसंपत्तियों का परिसमापन करने, तरलता की समस्याओं का प्रबंधन करने, *परिसंपत्ति-दायित्व असंतुलन* को दूर करने तथा प्रतिभूतियों पर कब्जा लेने, उनका विक्रय करने और इस प्रकार एनपीएयों को कम करने के उद्देश्य से वसूली एवं पुनर्निर्माण संबंधी उपाय अपनाकर ऋण वसूली में सुधार करने में सक्षम बनाता है। उक्त अधिनियम परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों की स्थापना का भी प्रावधान करता है, जिन्हें उधारकर्ता की प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों पर कब्जा लेने तथा उन्हें पट्टे, समनुदेशन अथवा विक्रय द्वारा अंतरण करने का अधिकार प्रदान किया गया है। उक्त अधिनियम ऐसी परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों को उधारकर्ता के व्यवसाय के प्रबंधन का अधिग्रहण करने का भी अधिकार प्रदान करता है। उक्त अधिनियम की संवैधानिक वैधता को *मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य,* [2004] 4 एससीसी 311 में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है। मार्डिया केमिकल्स के निर्णय के पश्चात संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 अधिनियमित किया गया। उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) को एनपीए अधिनियम, 2002 की धारा 13 के साथ-साथ पुनर्गठित किया गया। ये संशोधन इस उद्देश्य से किए गए कि बैंक/वित्तीय संस्थाएँ ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति से अपने द्वारा प्रस्तुत मूल आवेदन वापस लेकर तत्पश्चात एनपीए अधिनियम के अधीन कार्यवाही कर सकें। *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) के निर्णय में इस न्यायालय ने यह अभिलक्षित किया था कि जिन मामलों में प्रतिभूति ऋणदाता ने धारा 13(4) के अधीन *कार्यवाही* की है, वहाँ उधारकर्ता के लिए एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करना खुला रहेगा। उक्त निर्णय में यह भी कहा गया था कि यदि धारा 13(2) के अधीन सूचना की सेवा के पश्चात उधारकर्ता कोई आपत्ति उठाता है अथवा प्रतिभूति ऋणदाता के विचारार्थ कोई तथ्य प्रस्तुत करता है, तो बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा ऐसी आपत्तियों पर समुचित मनन किया जाना चाहिए तथा उन्हें स्वीकार न करने के संक्षिप्त कारण

उधारकर्ता को बताए जाने चाहिए। उक्त निर्णय में आगे यह भी कहा गया कि इस प्रकार संप्रेषित कारण केवल ऋणदाता की जानकारी के उद्देश्य से होंगे और वे उधारकर्ता को धारा 17 के अधीन न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करेंगे। वर्तमान अपीलकर्ता (मेसर्स ट्रांसको) ने मुख्यतः *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) में दिए गए इन कारणों पर भरोसा करते हुए यह तर्क तर्क दिया कि दिनांक 06.01.2003 की धारा 13(2) के अधीन सूचना मात्र कारण बताओ सूचना थी और वह एनपीए अधिनियम के अधीन "कार्यवाही" नहीं थी; अतः उक्त बैंक पर यह वैधानिक दायित्व था कि वह एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने से पूर्व मूल आवेदन संख्या 354/1999 की वापसी हेतु आवेदन प्रस्तुत करे।

एनपीएयाँ अर्थव्यवस्था पर एक बोझ हैं। जब वर्ष 2002 में यह अधिनियम अधिनियमित किया गया, उस समय एनपीएयों की राशि लगभग 1.10 लाख करोड़ रुपये थी। यह अर्थव्यवस्था की प्रगति में बाधक थी। मूलतः एनपीए वह खाता है जो भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अनुसार अव्यवहार्य और अनुत्पादक हो जाता है। उद्देश्य एवं कारण कथन में वर्णित अनुसार, एनपीए परिसंपत्तियों और दायित्वों के मध्य असंतुलन के कारण उत्पन्न होती है। एनपीए खाता बैंक अथवा वित्तीय संस्था के हाथों में एक परिसंपत्ति होता है। वह ऐसी राशि का प्रतिनिधित्व करता है जो बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा प्राप्त एवं वसूल की जा सकती है। इस दृष्टि से वह प्रतिभूति ऋणदाता के हाथों में एक परिसंपत्ति है। अतः एनपीए अधिनियम, 2002 मुख्यतः एनपीएयों को कम करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया, जिसके लिए केवल वसूली ही नहीं बल्कि पुनर्निर्माण संबंधी उपाय भी अपनाए गए। इसी कारण अधिनियम परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों, विशेष प्रयोजन वाहनों, परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनियों आदि की स्थापना का प्रावधान करता है, जिन्हें उधारकर्ता की प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों पर कब्जा लेने तथा उन्हें पट्टे, समनुदेशन अथवा विक्रय द्वारा अंतरण करने का अधिकार दिया गया है। यह अधिनियम प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों के साकारण का भी प्रावधान करता है। यह उधारकर्ता कंपनी के प्रबंधन के अधिग्रहण का भी प्रावधान करता है।

एनपीए अधिनियम, 2002 के अधिनियमन का एक अन्य कारण भी था। जब दीवानी न्यायालय बैंक/वित्तीय संस्थाओं द्वारा दायर वादों का शीघ्र निस्तारण करने में असफल रहे, तब संसद ने वर्ष 1993 में ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम अधिनियमित किया। तथापि, ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम में प्रतिभूतिकरण कंपनियों को ऋणों के समनुदेशन का प्रावधान नहीं था। प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों का समय पर परिसमापन भी संभव नहीं हो पा रहा था। बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को परिसंपत्तियों तथा प्रतिभूति हित का परिसमापन करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से वर्ष 2002 में एनपीए अधिनियम अधिनियमित किया गया। अतः एनपीए अधिनियम, ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम का अपवाद नहीं है। एनपीए अधिनियम प्रतिभूति ऋणदाताओं के अधिकारों पर विद्यमान सभी बंधनों को समाप्त करता है। यह अधिनियम राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (इसके पश्चात "राज्य वित्तीय निगम अधिनियम") की विशेषतः धाराओं 29 एवं 31 से प्रेरित है। एनपीए अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि उधारकर्ता की पुनर्भुगतान संबंधी देयता निश्चित हो चुकी है; ऋण देय हो गया है; और विलंब के कारण उधारकर्ता का खाता अधोमानक तथा अकार्यशील बन गया है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम तथा एनपीए अधिनियम, दोनों का उद्देश्य न्यायनिर्णयन-रहित प्रक्रिया द्वारा ऋण की वसूली करना है। ये दोनों अधिनियम प्रतिभूति ऋणदाताओं को संचयी उपचार उपलब्ध कराते हैं। प्रतिभूति ऋणदाता के अधिकारों पर सभी बंधनों को समाप्त कर उसे एक या अधिक संचयी उपचारों का चयन करने का अधिकार प्रदान किया गया है। एनपीए अधिनियम की धारा 13 तथा ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 17 सहपठित धारा 19 के पीछे निहित उद्देश्य समान है, अर्थात् ऋण की वसूली। वैचारिक दृष्टि से इन दोनों उपचारों के मध्य कोई अंतर्निहित अथवा निहित असंगति नहीं है। अतः, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एनपीए अधिनियम के अधिनियमन का उद्देश्य ऋण वसूली की प्रक्रिया को तीव्र करना तथा ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अधीन ऋण के साकारण के मार्ग में विद्यमान कमियों

एवं बाधाओं को दूर करना था, और इसी उद्देश्य से एनपीए अधिनियम, 2002 अधिनियमित किया गया।

ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 का विश्लेषण:

ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 का अधिनियमन बैंकों/वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों के त्वरित न्यायनिर्णयन एवं वसूली हेतु न्यायाधिकरणों की स्थापना के लिए किया गया है।

धारा 2(छ) में "ऋण" को ऐसी किसी भी देयता के रूप में परिभाषित किया गया है जिसे कोई बैंक, वित्तीय संस्था अथवा बैंकों का कोई संघ किसी व्यक्ति से देय राशि के रूप में दावा करता है। इसमें प्रतिभूतिकृत, अप्रतिभूतिकृत तथा समनुदिष्ट ऋण सम्मिलित हैं। इसमें डिक्री, मध्यस्थता निर्णय अथवा बंधक के अधीन देय ऋण भी सम्मिलित हैं।

अध्याय 3 ऋण वसूली न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार, शक्तियों एवं प्राधिकार से संबंधित है। धारा 17 ऋण वसूली न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार का प्रावधान करती है। धारा 17 के अनुसार ऋण वसूली न्यायाधिकरण बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा उन्हें देय *ऋणों की वसूली हेतु* प्रस्तुत आवेदनों को ग्रहण करने एवं उनका निर्णय करने के लिए क्षेत्राधिकार, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करेगा। अधिनियम की धारा 19 *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि जहाँ किसी बैंक अथवा वित्तीय संस्था को कोई ऋण वसूल करना हो, वहाँ वह ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकती है। संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 द्वारा धारा 19(1) में तीन परंतुक जोड़े गए। प्रथम परंतुक के अनुसार बैंक अथवा वित्तीय संस्था, ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति से, अपने द्वारा प्रस्तुत आवेदन के आधार पर मूल आवेदन को वापस ले सकती है, ताकि एनपीए अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सके, *यदि उस अधिनियम के अधीन पूर्व में कोई कार्यवाही न की गई हो।* द्वितीय परंतुक में यह भी उपबंधित किया गया है कि प्रथम परंतुक के अधीन वापसी हेतु प्रस्तुत आवेदन पर ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा शीघ्रतापूर्वक विचार किया जाएगा

और आवेदन की तिथि से तीस दिनों के भीतर उसका निस्तारण किया जाएगा। इसका कारण स्पष्ट है। एनपीए अधिनियम की धारा 36 के अधीन बैंक अथवा वित्तीय संस्था वित्तीय परिसंपत्ति के संबंध में धारा 13(4) के अधीन तभी कदम उठा सकती है जब वह परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर किया जाए। इसलिए धारा 19(1) का द्वितीय परंतुक यह अपेक्षा करता है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण, जहाँ तक संभव हो, बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा प्रस्तुत वापसी आवेदन का निर्णय आवेदन की तिथि से तीस दिनों के भीतर कर दे। धारा 19(1) का तृतीय परंतुक यह उपबंधित करता है कि यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण वापसी की अनुमति देने से इंकार करता है, तो उसे उसके कारण अभिलिखित करने होंगे। धारा 19(6) प्रतिवादी को बैंक की निश्चित धनराशि संबंधी मांग के विरुद्ध समायोजन का दावा प्रस्तुत करने का अधिकार प्रदान करती है। इसी प्रकार, धारा 19(8) प्रतिवादी को प्रतिदावा प्रस्तुत करने का अधिकार देती है। धारा 19(12) ऋण वसूली न्यायाधिकरण को निषेधाज्ञा, स्थगनादेश अथवा निर्णय-पूर्व कुर्की के रूप में अंतरिम आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान करती है, जिसके द्वारा प्रतिवादी को अपनी संपत्तियों और परिसंपत्तियों का अंतरण, व्ययन अथवा अन्य प्रकार से व्यवहार करने अथवा उनका निपटान करने से रोका जा सकता है। ऐसा केवल ऋण वसूली न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति से ही किया जा सकता है। धारा 19(13) के अधीन, यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण इस बात से संतुष्ट हो कि प्रतिवादी उस संपत्ति का व्ययन करने वाला है अथवा उसे क्षति पहुँचाने वाला है जिससे अंततः बैंक अथवा वित्तीय संस्था के पक्ष में पारित होने वाली डिक्री निष्फल हो सकती है, तो वह प्रतिवादी को प्रतिभूति प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकता है। धारा 19(18) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण समता के आधार पर ऋण वसूली प्रमाण-पत्र जारी होने से पूर्व अथवा पश्चात किसी संपत्ति के लिए रिसीवर नियुक्त करने हेतु भी सशक्त है। धारा 19(19) के अनुसार किसी कंपनी के विरुद्ध जारी ऋण वसूली प्रमाण-पत्र को ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है, जो संपत्ति के विक्रय का आदेश देकर विक्रय

प्राप्ति को कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 529-क के अनुसार प्रतिभूति ऋणदाताओं में वितरित कर सकता है तथा यदि कोई शेष राशि हो तो उसे ऋणी कंपनी को अदा कर सकता है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 20 अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील का प्रावधान करती है। धारा 21 यह अपेक्षा करती है कि आवेदक, ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा धारा 19 के अधीन निर्धारित देय ऋण राशि का पचहत्तर प्रतिशत पूर्वनिक्षेपित करे। धारा 25 ऋण वसूली के उपायों का उल्लेख करती है। इसमें तीन उपायों का प्रावधान है, अर्थात् (क) कुर्की एवं विक्रय; (ख) प्रतिवादी की गिरफ्तारी; (ग) प्रतिवादी की संपत्तियों के प्रबंधन हेतु रिसीवर की नियुक्ति। धारा 28 ऋण वसूली के अन्य उपायों का भी प्रावधान करती है। इसमें कहा गया है कि जहाँ धारा 19(7) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा वसूली अधिकारी को प्रमाण-पत्र जारी किया गया हो, वहाँ वसूली अधिकारी धारा 25 में विनिर्दिष्ट उपायों के अतिरिक्त धारा 28 में उल्लिखित एक या अधिक उपायों द्वारा भी ऋण राशि की वसूली कर सकता है। धारा 29 आयकर अधिनियम, 1961 की द्वितीय एवं तृतीय अनुसूचियों के उपबंधों को समाविष्ट करती है।

उपर्युक्त उपबंधों के विश्लेषण से हम पाते हैं कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम ऋण वसूली के संबंध में स्वयं में एक संपूर्ण संहिता है। यह ऋण वसूली के विविध उपायों का प्रावधान करता है। इसमें आयकर अधिनियम, 1961 की द्वितीय एवं तृतीय अनुसूचियों के उपबंधों को भी समाविष्ट किया गया है। अतः वसूली प्रमाण-पत्र के अधीन देय ऋण की वसूली विभिन्न प्रकार से की जा सकती है। इसमें वर्णित उपचार एक-दूसरे के पूरक हैं। ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम न्यायनिर्णयन का प्रावधान करता है। यह देय ऋण के संबंध में विवादों के न्यायनिर्णयन का प्रावधान करता है। यह प्रतिभूतिकृत तथा अप्रतिभूतिकृत दोनों प्रकार के ऋणों को आच्छादित करता है। तथापि, यह संपत्ति अंतरण अधिनियम, विशेष रूप से उसकी धाराओं 69 एवं 69क, की प्रयोज्यता को निरस्त नहीं करता। इसके अतिरिक्त, जिन मामलों में ऋण अंशों के गिरवीकरण अथवा अचल संपत्तियों के बंधक द्वारा प्रतिभूतिकृत

हो, वहाँ समय बीतने और ऋण वसूली न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों में विलंब के कारण गिरवी रखी गई परिसंपत्तियों अथवा बंधक संपत्तियों का मूल्य अनिवार्यतः घटता जाता है। मुद्रास्फीति के कारण बैंक/वित्तीय संस्था के हाथों में विद्यमान परिसंपत्तियों का मूल्य निरंतर कम होता जाता है, जिससे परिसंपत्ति-दायित्व असंतुलन उत्पन्न होता है। इन परिस्थितियों का समाधान ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम में नहीं किया गया है और इसी कारण संसद को एनपीए अधिनियम, 2002 अधिनियमित करना पड़ा।

एनपीए अधिनियम, 2002 का विश्लेषण:

हम एनपीए अधिनियम के अधिनियमन के उद्देश्यों एवं कारणों के विवरण पर पूर्व में चर्चा कर चुके हैं, अतः उसे पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है। एनपीए अधिनियम का अधिनियमन प्रतिभूतिकरण के विनियमन तथा वित्तीय परिसंपत्तियों के पुनर्निर्माण के लिए किया गया है। यह प्रतिभूति हित के प्रवर्तन तथा उससे संबंधित विषयों का भी प्रावधान करता है।

धारा 2(ख) "परिसंपत्ति पुनर्निर्माण" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है किसी प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा *किसी बैंक या वित्तीय संस्था के किसी वित्तीय सहायता में निहित किसी अधिकार अथवा हित का अधिग्रहण*, ताकि उस वित्तीय सहायता की वसूली की जा सके। धारा 2(फ) में "उधारकर्ता" का अर्थ उस प्रधान उधारकर्ता से है जिसे किसी बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की गई हो और इसमें प्रत्याभूतिकर्ता, बंधककर्ता तथा गिरवीकर्ता भी सम्मिलित हैं। इसमें वह व्यक्ति भी सम्मिलित है जो किसी बैंक अथवा वित्तीय संस्था के वित्तीय सहायता संबंधी अधिकार अथवा हित के किसी परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा अधिग्रहण के परिणामस्वरूप उसका उधारकर्ता बन जाता है। "ऋण" शब्द को भी धारा 2(हक) के अधीन परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ वही ऋण है जो ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम में परिभाषित किया गया है। धारा 2(क) "वित्तीय सहायता" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है किसी बैंक अथवा वित्तीय

संस्था द्वारा दिया गया कोई ऋण अथवा अग्रिम, या अभिदत्त कोई ऋणपत्र अथवा बांड, या दी गई कोई प्रत्याभूति, या स्थापित कोई साख-पत्र, अथवा प्रदान की गई कोई अन्य ऋण सुविधा। अतः परिसंपत्ति पुनर्निर्माण का अर्थ है परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी अथवा परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी द्वारा किसी बैंक अथवा वित्तीय संस्था के पक्ष में सृजित किसी अधिकार अथवा हित का अधिग्रहण, जो दिए गए ऋण अथवा अग्रिम, अभिदत्त ऋणपत्रों अथवा बांडों, दी गई प्रत्याभूतियों अथवा साख-पत्रों के संबंध में बैंक अथवा वित्तीय संस्था के पक्ष में सृजित हुआ हो। इससे स्पष्ट होता है कि एनपीए अधिनियम मूलतः ऐसी देयता से संबंधित है जो निश्चित एवं परिपक्व हो चुकी है। एनपीए अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि परिसंपत्ति बैंक/वित्तीय संस्था के पक्ष में सृजित की गई है, जिसे परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी अथवा परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को समनुदिष्ट किया जा सकता है, और वह कंपनी तत्पश्चात प्रतिभूति ऋणदाता अर्थात् बैंक/वित्तीय संस्था के स्थान पर आ जाती है। धारा 2(ल) "वित्तीय परिसंपत्ति" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है कोई ऋण अथवा प्राप्ति। इसमें किसी ऋण अथवा प्राप्ति पर दावा सम्मिलित है, चाहे वह प्रतिभूतिकृत हो या अप्रतिभूतिकृत। इसमें बंधक, भार, दृष्टिबंधक अथवा गिरवी भी सम्मिलित हैं। इसमें ऐसे ऋण अथवा प्राप्ति के आधारभूत प्रतिभूति में कोई अधिकार अथवा हित भी सम्मिलित है। इसमें संपत्ति में कोई लाभकारी हित भी सम्मिलित है। इसमें कोई वित्तीय सहायता भी सम्मिलित है। धारा 2(न) "दृष्टिबंधक" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है उधारकर्ता द्वारा वित्तीय सहायता के लिए प्रतिभूति के रूप में किसी प्रतिभूति ऋणदाता के पक्ष में सृजित भार। धारा 2(ओ) "एनपीए" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है उधारकर्ता की ऐसी परिसंपत्ति अथवा खाता जिसे किसी बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा अवमानक, संदिग्ध अथवा हानि परिसंपत्ति के रूप में वर्गीकृत किया गया हो। धारा 2(र) "उद्गमकर्ता" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है वित्तीय परिसंपत्ति का स्वामी, जिसकी परिसंपत्ति एनपीए अधिनियम के प्रयोजनों के लिए किसी पुनर्निर्माण कंपनी अथवा परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी द्वारा अधिग्रहित की जाती है। इसी

प्रकार, धारा 2(क्यू) के अधीन "दायित्वग्रस्त व्यक्ति" का अर्थ वह व्यक्ति है जो उद्गमकर्ता के प्रति दायी है। उधारकर्ता एक दायित्वग्रस्त व्यक्ति है, जबकि प्रतिभूति ऋणदाता अर्थात् बैंक अथवा वित्तीय संस्था उद्गमकर्ता है, जो वित्तीय परिसंपत्ति का स्वामी होता है। यह धारा यह भी इंगित करती है कि बैंक/वित्तीय संस्थाएँ वित्तीय परिसंपत्तियों की स्वामिनी हैं। केवल तब, जब बैंक अथवा वित्तीय संस्था के हाथों में स्थित ऐसी परिसंपत्तियाँ अवमानक, संदिग्ध अथवा हानि परिसंपत्ति बन जाती हैं, तब वह खाता अथवा परिसंपत्ति एनपीए के रूप में वर्गीकृत होती है और तभी एनपीए अधिनियम प्रवर्तित होता है। धारा 2(ज) प्रतिभूतिकरण को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है किसी उद्गमकर्ता (बैंक/वित्तीय संस्था) से किसी वित्तीय परिसंपत्ति का किसी परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा अधिग्रहण। धारा 2(जग) प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है वह संपत्ति जिस पर प्रतिभूति हित सृजित किया गया हो। धारा 2(जघ) प्रतिभूति ऋणदाता को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है कोई बैंक अथवा वित्तीय संस्था। धारा 2(जङ) प्रतिभूतिकृत ऋण को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है ऐसा ऋण जो किसी प्रतिभूति हित द्वारा सुरक्षित किया गया हो। धारा 2(जच) प्रतिभूति हित को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ है किसी संपत्ति पर किसी भी प्रकार का अधिकार, स्वामित्व एवं हित, जो किसी प्रतिभूति ऋणदाता के पक्ष में सृजित किया गया हो, और इसमें बंधक, भार, दृष्टिबंधक तथा समनुदेशन भी सम्मिलित हैं। एनपीए अधिनियम की धारा 31 कुछ प्रकार के प्रतिभूति हितों को इस अधिनियम के उपबंधों से अपवर्जित करती है।

धारा 5 प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा वित्तीय परिसंपत्तियों में अधिकार अथवा हित के अधिग्रहण से संबंधित है। धारा 5क को संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 द्वारा जोड़ा गया। इसके अनुसार यदि किसी उधारकर्ता की कोई वित्तीय परिसंपत्ति किसी प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा अधिग्रहित की जाती है और यदि ऐसी वित्तीय परिसंपत्ति में एक से अधिक बैंकों अथवा वित्तीय संस्थाओं के

प्रतिभूतिकृत ऋण सम्मिलित हों, जिनकी वसूली के लिए उन बैंकों अथवा वित्तीय संस्थाओं ने दो या अधिक ऋण वसूली न्यायाधिकरणों के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किए हों, तो प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी अधिकारिता रखने वाले किसी एक ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष सभी लंबित आवेदनों को किसी एक न्यायाधिकरण में अंतरण हेतु आवेदन प्रस्तुत कर सकती है। धारा 5 क उन परिस्थितियों का संकेत देती है जिनमें एनपीए अधिनियम का सहारा लेने से पूर्व बैंकों/वित्तीय संस्थाओं को ऋण वसूली न्यायाधिकरण से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होता है। धारा 5 क उन विषयों को इंगित करती है जो ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के प्रथम परंतुक को आकर्षित करते हैं। एनपीए अधिनियम की धारा 6 *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि बैंक अथवा वित्तीय संस्था, यदि वह उपयुक्त समझे, तो किसी प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा वित्तीय परिसंपत्तियों के अधिग्रहण की सूचना उधारकर्ता तथा अन्य संबंधित व्यक्तियों को दे सकती है। यह भी एक सक्षमकारी उपबंध है। बैंक/वित्तीय संस्था उधारकर्ता को वित्तीय परिसंपत्तियों के अधिग्रहण की सूचना दे भी सकती है और नहीं भी दे सकती। इसका कारण यह है कि परिसंपत्तियाँ रातोंरात हस्तांतरित की जा सकती हैं। कुछ मामलों में बैंक/वित्तीय संस्था को यह आशंका हो सकती है कि उधारकर्ता किसी तृतीय पक्ष का अधिकार सृजित कर देगा; ऐसी स्थिति में बैंक/वित्तीय संस्था अधिग्रहण की सूचना न देना उचित समझ सकती है। अन्य मामलों में वह सूचना दे सकती है यदि वह संतुष्ट हो कि वित्तीय परिसंपत्ति के व्ययन अथवा अंतरण की संभावना नहीं है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि एनपीए अधिनियम की योजना, जिसकी संवैधानिक वैधता पूर्व में अनुमोदित की जा चुकी है, विभिन्न सक्षमकारी उपबंधों का प्रावधान करती है। यह बैंक/वित्तीय संस्था को यह विवेकाधिकार प्रदान करती है कि वह अपनी परिसंपत्तियों को व्ययन, अंतरण अथवा अन्य किसी प्रकार से निपटाए जाने से सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक कदम उठा सके। धारा 9 उन विभिन्न उपायों से संबंधित है जिन्हें परिसंपत्ति पुनर्निर्माण हेतु पुनर्निर्माण कंपनी द्वारा

अपनाया जाना अपेक्षित है। धारा 10 प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी के कृत्यों से संबंधित है। धारा 11 प्रतिभूतिकरण, पुनर्निर्माण अथवा बैंक/वित्तीय संस्था अथवा प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा पुनर्निर्माण कंपनी के मध्य देय राशि के भुगतान न किए जाने से संबंधित विवादों के निपटान का प्रावधान करती है। यह आगे उपबंधित करती है कि ऐसे विवादों का निपटान सुलह अथवा मध्यस्थता द्वारा किया जाएगा। यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 11 के अधीन विचारित विवाद उधारकर्ता के साथ होने वाले विवाद नहीं हैं। धारा 12 भारतीय रिज़र्व बैंक को समय-समय पर निर्देश जारी करने की शक्ति प्रदान करती है। किसी खाते को एनपीए के रूप में वर्गीकृत किया जाना बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जाना है।

धारा 13 अध्याय 3 में स्थित है, जो प्रतिभूति हित के प्रवर्तन से संबंधित है। यह एक अध्यारोही उपबंध से प्रारंभ होती है। इसमें अन्य बातों के साथ यह उपबंधित है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 69 अथवा धारा 69क में निहित किसी बात के होते हुए भी, किसी प्रतिभूति ऋणदाता के पक्ष में सृजित कोई भी प्रतिभूति हित, न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार उस ऋणदाता द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है। जब हम "न्यायालय" शब्द का उल्लेख करते हैं, तो उसमें ऋण वसूली न्यायाधिकरण भी सम्मिलित है। एनपीए अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (2) को हम नीचे उद्धृत करते हैं :

> *"13. प्रतिभूति हित का प्रवर्तन.*
>
> (2) जहाँ कोई उधारकर्ता, जो किसी प्रतिभूति करार के अधीन किसी प्रतिभूति ऋणदाता के प्रति दायित्वाधीन है, प्रतिभूतिकृत ऋण अथवा उसकी किसी किश्त के पुनर्भुगतान में व्यतिक्रम करता है और ऐसे ऋण के संबंध में उसका खाता प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा एनपीए के रूप में वर्गीकृत कर दिया जाता है, तब प्रतिभूति ऋणदाता लिखित सूचना द्वारा उधारकर्ता से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह सूचना की तारीख

से साठ दिनों के भीतर अपनी समस्त देयताओं का पूर्ण निर्वहन करे, अन्यथा प्रतिभूति ऋणदाता उपधारा (4) के अधीन प्रदत्त समस्त अथवा किसी भी अधिकार का प्रयोग करने का अधिकारी होगा।"

वर्तमान वाद में विवाद के केंद्रबिंदु धारा 13(2) का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई उधारकर्ता, जो किसी प्रतिभूति ऋणदाता के प्रति *दायित्वाधीन* है, *प्रतिभूतिकृत ऋण के पुनर्भुगतान में कोई व्यतिक्रम करता है* और ऐसे ऋण के संबंध में उसका खाता एनपीए के रूप में वर्गीकृत कर दिया जाता है, तब प्रतिभूति ऋणदाता लिखित सूचना द्वारा उधारकर्ता से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह सूचना की तारीख से साठ दिनों के भीतर अपनी देयताओं का निर्वहन करे, अन्यथा प्रतिभूति ऋणदाता धारा 13(4) के अधीन प्रदत्त किसी अथवा सभी अधिकारों का प्रयोग करने का अधिकारी होगा। धारा 13(2) के अध्ययन से स्पष्ट है कि यह उपधारा इस आधार पर कार्य करती है कि उधारकर्ता पूर्व से ही किसी दायित्व के अधीन है तथा उसके अतिरिक्त बैंक अथवा वित्तीय संस्था की पुस्तकों में उसका खाता अवमानक, संदिग्ध अथवा हानि परिसंपत्ति के रूप में वर्गीकृत किया जा चुका है। एनपीए अधिनियम तभी लागू होता है जब ये दोनों शर्तें पूर्ण हो जाती हैं। धारा 13(2) इस आधार पर कार्य करती है कि ऋण देय हो चुका है। यह इस आधार पर भी कार्य करती है कि बैंक/वित्तीय संस्था की पुस्तकों में उधारकर्ता का खाता, जो बैंक/वित्तीय संस्था की एक परिसंपत्ति है, अकार्यशील हो चुका है। अतः दायित्व के संबंध में किसी विवाद की कोई गुंजाइश नहीं रहती। दायित्व के उत्पन्न होने, दायित्व के निर्धारण तथा दायित्व के परिसमापन में अंतर होता है। धारा 13(2) दायित्व के परिसमापन से संबंधित है। धारा 13 प्रतिभूति हित के प्रवर्तन से संबंधित है; अतः एनपीए अधिनियम तथा ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अधीन प्रतिभूति हित के प्रवर्तन के उपाय परस्पर पूरक हैं। इन दोनों भिन्न अधिनियमों के अंतर्गत उपलब्ध उपायों में कोई अंतर्निहित अथवा निहित असंगति नहीं है। इसलिए, निर्वाचन के सिद्धांत का इस वाद में कोई अनुप्रयोग नहीं है। धारा

13(3) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि धारा 13(2) के अधीन दी गई सूचना में उधारकर्ता द्वारा देय राशि का विवरण तथा उन प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों का विवरण दिया जाएगा जिनके प्रवर्तन का बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा आशय है। उधारकर्ता द्वारा प्रतिभूतिकृत ऋण का भुगतान न किए जाने की स्थिति में धारा 13(2) के अधीन सूचना मांग-सूचना के रूप में दी जाती है। यह आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 156 के अधीन मांग-सूचना के अत्यंत समान है। किसी खाते के एनपीए के रूप में वर्गीकृत किए जाने के पश्चात उधारकर्ता को ऋण चुकाने हेतु साठ दिनों का अंतिम अवसर प्रदान किया जाता है। इस न्यायालय द्वारा *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त), में दिए गए निर्णय के पश्चात संशोधन अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा धारा 13(3-क) जोड़ी गई, जिसके माध्यम से उधारकर्ता को अपने खाते के एनपीए के रूप में वर्गीकरण के विरुद्ध प्रतिभूति ऋणदाता के समक्ष अभ्यावेदन/आपत्ति प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की गई। यदि उचित समझे तो वह देय राशि के संबंध में भी आपत्ति कर सकता है। धारा 13(3-क) के अधीन यदि बैंक/वित्तीय संस्था इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि ऐसी आपत्ति स्वीकार्य नहीं है, तो वह एक सप्ताह के भीतर अभ्यावेदन/आपत्ति अस्वीकार किए जाने के कारणों की सूचना देगी। धारा 13(3-क) में एक परंतुक भी जोड़ा गया है, जिसमें यह उपबंधित है कि इस प्रकार संप्रेषित कारण उधारकर्ता को धारा 17 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करेंगे। एनपीए अधिनियम की धारा 13 की उपधाराओं (2), (3) तथा (3-क) की योजना से यह स्पष्ट होता है कि धारा 13(2) के अधीन दी जाने वाली सूचना मात्र कारण बताओ सूचना नहीं है; वह एक मांग-सूचना है। यह मांग-सूचना इस आधार पर निर्भर करती है कि ऋणी किसी दायित्व के अधीन है तथा उस दायित्व के संबंध में उसका खाता अवमानक, संदिग्ध अथवा हानि परिसंपत्ति बन चुका है। ऋण की पहचान तथा खाते का एनपीए के रूप में वर्गीकरण भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जाता है। अतः ऐसी मांग-सूचना एनपीए अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई एक कार्यवाही का गठन करती

है और इसकी तुलना कारण बताओ सूचना से नहीं की जा सकती। वास्तव में, क्योंकि यह मांग-सूचना एक कार्यवाही का गठन करती है, इसलिए धारा 13(3-क) उधारकर्ता को प्रतिभूति ऋणदाता के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करती है। धारा 13(2) बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा धारा 13(4) के आह्वान के लिए एक पूर्वापेक्षित शर्त है। एक बार धारा 13(2) की दोनों शर्तें पूर्ण हो जाने पर, अगला कदम जो बैंक अथवा वित्तीय संस्था उठा सकती है, वह यह है कि वह या तो उधारकर्ता की प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों का कब्जा ग्रहण करे, अथवा उधारकर्ता के व्यवसाय का प्रबंधन अपने अधीन ले ले, अथवा प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों के प्रबंधन के लिए किसी प्रबंधक की नियुक्ति करे, अथवा ऐसे किसी व्यक्ति से, जिसने उधारकर्ता से कोई प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति अर्जित की हो, यह अपेक्षा करे कि वह प्रतिभूतिकृत ऋण के परिसमापन की दिशा में प्रतिभूति ऋणदाता को भुगतान करे।

धारा 13(2) तथा धारा 13(4) की योजना का संयुक्त अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 13(2) के अधीन दी गई सूचना मात्र कारण बताओ सूचना नहीं है, बल्कि वह एनपीए अधिनियम के प्रयोजनों के लिए बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा की गई एक कार्यवाही का गठन करती है। धारा 13(6) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि धारा 13(4) के अधीन कब्जा ग्रहण किए जाने अथवा व्यवसाय का प्रबंधन अपने अधीन लिए जाने के पश्चात प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति का कोई भी अंतरण बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा किए जाने पर, अंतरणग्राही में उस प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति से संबंधित सभी अधिकार उसी प्रकार निहित हो जाएंगे मानो ऐसा अंतरण उस प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति के स्वामी द्वारा किया गया हो। अतः धारा 13(6) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि एक बार बैंक/वित्तीय संस्था प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति का कब्जा ग्रहण कर लेती है, तब उस परिसंपत्ति में निहित अधिकार, स्वामित्व तथा हित के साथ वह उसी प्रकार व्यवहार कर सकती है मानो वह स्वयं उस परिसंपत्ति की स्वामिनी हो। दूसरे शब्दों में, परिसंपत्ति सभी भारों से मुक्त होकर बैंक/वित्तीय संस्था में निहित हो जाएगी तथा प्रतिभूति ऋणदाता उसके संबंध में अंतरणग्राही को निर्विवाद

स्वामित्व प्रदान करने का अधिकारी होगा। धारा 13(7) धारा 13(4) के अधीन कार्यवाही करने के लिए बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा किए गए सभी व्ययों, प्रभारों तथा खर्चों की वसूली से संबंधित है। धारा 13(7) उधारकर्ता से देय राशियों की वसूली में प्राथमिकता का प्रावधान करती है। यह *अन्य बातों के साथ* अधिशेष राशि उस व्यक्ति को भुगतान किए जाने का भी उपबंध करती है जो उसके लिए अधिकारयुक्त हो। धारा 13(7) अन्य बातों के साथ यह उपबंधित करती है कि यदि प्रतिभूति ऋणदाता की समस्त देय राशियाँ तथा उसके द्वारा किए गए सभी व्यय, प्रभार एवं खर्च, विक्रय अथवा अंतरण के लिए नियत तिथि से पूर्व प्रतिभूति ऋणदाता को अर्पित कर दिए जाते हैं, तो प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति का विक्रय अथवा अंतरण बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को नहीं किया जाएगा तथा उस संबंध में कोई आगे की कार्यवाही नहीं की जाएगी। धारा 13(9) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि जहाँ कोई वित्तीय परिसंपत्ति एक से अधिक बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तपोषित हो अथवा किसी संघीय वित्तपोषण व्यवस्था के अंतर्गत संयुक्त वित्तपोषण हुआ हो, वहाँ उस संघ के किसी एकमात्र प्रतिभूति ऋणदाता को धारा 13(4) के अधीन अधिकारों का प्रयोग करने का अधिकार तब तक नहीं होगा जब तक कि ऐसे अधिकारों के प्रयोग के लिए सभी प्रतिभूति ऋणदाता सहमत न हों। धारा 13(9) एक और ऐसी स्थिति का प्रावधान करती है जिसमें ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के प्रथम परंतुक के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति अपेक्षित हो सकती है। ऐसे मामलों में प्रतिभूति ऋणदाताओं के मध्य हुए करार को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है, न कि प्रतिभूति ऋणदाताओं के अधिकारों पर किसी प्रतिबंध के रूप में, बल्कि अत्यधिक सावधानी के रूप में। सामान्यतः ऐसे करार अत्यंत जटिल होते हैं, विशेषकर इसलिए कि संघ में सम्मिलित प्रत्येक प्रतिभूति ऋणदाता के अधिकारों का परीक्षण करना आवश्यक हो सकता है। किन्तु यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष संघ के सभी प्रतिभूति ऋणदाता धारा 13(9) के अधीन कोई करार कर लेते हैं, तो ऐसी किसी अतिरिक्त

जांच की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे मामलों में ऋण वसूली न्यायाधिकरण को केवल यह देखना होता है कि करार में संघ के सभी प्रतिभूति ऋणदाताओं का प्रतिनिधित्व किया गया है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि एनपीए अधिनियम की योजना प्रतिभूति ऋणदाताओं और उधारकर्ता के मध्य विवादों से संबंधित नहीं है। इसके विपरीत, एनपीए अधिनियम प्रतिभूति ऋणदाताओं के परस्पर अधिकारों से संबंधित है। इसका कारण यह है कि एनपीए अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि उधारकर्ता का दायित्व निश्चित एवं परिपक्व हो चुका है तथा उसका खाता बैंक/वित्तीय संस्था के हाथों में एनपीए के रूप में वर्गीकृत हो चुका है। धारा 13(9) कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 529-क के अधीन कर्मकारों के समप्राधान भाराधिकार से भी संबंधित है, इसके अतिरिक्त बैंक एवं वित्तीय संस्थाएँ भी प्रतिभूति ऋणदाता होती हैं। धारा 13(10) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि जहाँ प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों के विक्रय से प्राप्त आय से प्रतिभूति ऋणदाता की समस्त देयताओं का पूर्ण भुगतान नहीं हो पाता, वहाँ प्रतिभूति ऋणदाता शेष राशि की वसूली के लिए एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। अतः धारा 13(10) यह प्रदर्शित करती है कि बैंक/वित्तीय संस्था न केवल ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति के साथ अथवा उसके बिना एनपीए अधिनियम के अधीन कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है, बल्कि एनपीए अधिनियम का सहारा लेने के पश्चात भी उसे विधिक रूप से यह स्वतंत्रता प्राप्त है कि यदि धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही से प्रतिभूति ऋणदाताओं के समस्त ऋणों का पूर्ण परिसमापन नहीं हो पाता, तो वह शेष राशि की वसूली हेतु पुनः ऋण वसूली न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटा सके। धारा 13(10) इस निष्कर्ष को और सुदृढ़ करती है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम तथा एनपीए अधिनियम के अधीन उपलब्ध ऋण वसूली के उपाय परस्पर पूरक हैं। इसके अतिरिक्त, धारा 13(10) यह भी प्रदर्शित करती है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) का प्रथम परंतुक एक सक्षमकारी उपबंध है तथा उसे एनपीए अधिनियम का सहारा लेने की

पूर्वापेक्षित शर्त के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता। एनपीए अधिनियम की धारा 13(11) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि धारा 13 के अधीन प्रतिभूति ऋणदाता को प्रदत्त अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्रतिभूति ऋणदाता प्रत्याभूतिकर्ता अथवा गिरवीकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकारी होगा तथा वह प्रधान उधारकर्ता के विरुद्ध धारा 13(4) के अधीन कार्यवाही किए बिना भी गिरवी रखी गई परिसंपत्तियों का विक्रय करने का अधिकारी होगा। धारा 13(13) यह उपबंधित करती है कि धारा 13(2) के अधीन सूचना प्राप्त होने के पश्चात कोई भी उधारकर्ता, प्रतिभूति ऋणदाता की पूर्व लिखित सहमति के बिना, सूचना में उल्लिखित अपनी किसी भी प्रतिभूतिकृत परिसंपत्ति का विक्रय, पट्टा अथवा अन्य किसी प्रकार से अंतरण नहीं करेगा। अतः धारा 13(13) भी हमारे इस दृष्टिकोण को और सुदृढ़ करती है कि धारा 13(2) के अधीन दी गई सूचना मात्र कारण बताओ सूचना नहीं है। वास्तव में, धारा 13(13) यह इंगित करती है कि धारा 13(2) की सूचना प्रभावी रूप से एक कुर्की/निषेधाज्ञा के रूप में कार्य करती है, जो उधारकर्ता को प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों के व्ययन से रोकती है। इसलिए, वर्तमान मामले में दिनांक 06.01.2003 की ऐसी सूचना मात्र कारण बताओ सूचना नहीं है, बल्कि एनपीए अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई एक कार्यवाही है।

एनपीए अधिनियम की धारा 17 अपील का अधिकार प्रदान करती है। यह *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि कोई भी व्यक्ति, जिसमें उधारकर्ता भी सम्मिलित है, यदि धारा 13(4) के अधीन प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा अधिकारों के प्रयोग से व्यथित है, तो वह ऐसी कार्यवाही किए जाने की तारीख से पैंतालीस दिनों के भीतर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। ऐसे आवेदन के साथ एनपीए अधिनियम के अधीन बनाए गए वर्ष 2002 के नियमों द्वारा विहित शुल्क का भुगतान किया जाना आवश्यक है। संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 द्वारा धारा 17(1) में एक परंतुक जोड़ा गया, जिसमें यह उपबंधित किया गया कि उधारकर्ता तथा

उधारकर्ता के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने के लिए भिन्न-भिन्न शुल्क विहित किए जा सकते हैं। अत्यधिक सावधानी के रूप में धारा 17(1) में एक स्पष्टीकरण भी जोड़ा गया है, जिसमें यह कहा गया है कि प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा उधारकर्ता के अभ्यावेदन को अस्वीकार करने के कारणों का संप्रेषण, ऋण वसूली न्यायाधिकरण में अपील का आधार नहीं बनेगा। किन्तु धारा 17(2) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण को यह विचार करना आवश्यक है कि प्रतिभूति हित के प्रवर्तन के लिए प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा धारा 13(4) में निर्दिष्ट किसी भी उपाय का प्रयोग एनपीए अधिनियम तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुरूप है अथवा नहीं। यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का परीक्षण करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि धारा 13(4) के अधीन अपनाए गए उपायों में से कोई भी उपाय एनपीए अधिनियम के अनुरूप नहीं है, तो वह प्रतिभूति ऋणदाता को कब्जा अथवा प्रबंधन उधारकर्ता को पुनर्स्थापित करने का निर्देश देगा [एनपीए अधिनियम की धारा 17(3) देखें]। दूसरी ओर, यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण यह घोषित कर देता है कि धारा 13(4) के अधीन प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा अपनाई गई कार्यवाही एनपीए अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप है, तब वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित किसी बात के होते हुए भी, प्रतिभूति ऋणदाता अपनी प्रतिभूतिकृत देयता की वसूली हेतु धारा 13(4) में विनिर्दिष्ट एक या अधिक उपायों का सहारा लेने का अधिकारी होगा।

हमारे मत में, धारा 17(4) यह स्पष्ट करती है कि प्रतिभूति ऋणदाता धारा 13(4) के अधीन उपलब्ध किसी भी उपाय का सहारा लेने के लिए स्वतंत्र है, भले ही उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में कुछ भी निहित हो। उदाहरणार्थ, यदि किसी मामले में धारा 13(4) के अधीन प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा अपनाए गए उपाय किसी राज्य भू-राजस्व विधि के किसी उपबंध से टकराव में आते हों, तो ऐसे टकराव के बावजूद धारा 13(4) के उपबंध स्थानीय विधि पर प्रधानता प्राप्त करेंगे। यह स्थिति एनपीए अधिनियम की धारा 35 द्वारा भी स्पष्ट

कर दी गई है, जिसमें यह उपबंधित है कि जहाँ अन्य विधियों के उपबंध एनपीए अधिनियम से असंगत हों, वहाँ एनपीए अधिनियम के उपबंध प्रभावी होंगे। धारा 35 एक अन्य दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रतिभूति प्रवर्तन के उपायों की दृष्टि से एनपीए अधिनियम और ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के बीच कोई अंतर्निहित अथवा निहित असंगति नहीं है। धारा 35 केवल उन अन्य विधियों पर अधिभावी प्रभाव प्रदान करती है जो एनपीए अधिनियम से असंगत हों। जहाँ तक वर्तमान वाद का संबंध है, दोनों अधिनियमों के अधीन उपलब्ध उपाय परस्पर पूरक हैं। अतः उपचारों के चयन का सिद्धांत (उपचार-निर्वाचन सिद्धांत) वर्तमान मामले में लागू नहीं होता।

वर्तमान वाद में एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही के विरुद्ध अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत करने के संबंध में न्यायालय शुल्क के भुगतान को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ है। इस संदर्भ में कुछ तथ्यों का उल्लेख आवश्यक है। दिनांक 21.06.2002 को एनपीए अधिनियम प्रवृत्त हुआ। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही से व्यथित कोई भी व्यक्ति, जिसमें उधारकर्ता भी सम्मिलित है, एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन अपील के रूप में न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटा सकता है। यह न्यायाधिकरण ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन स्थापित किया गया है। यह तथ्य महत्वपूर्ण है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अधीन स्थापित न्यायाधिकरण ही एनपीए अधिनियम के अधीन भी न्यायाधिकरण है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19 तथा ऋण वसूली न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के साथ पठित होने पर यह स्पष्ट होता है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने वाले बैंक अथवा वित्तीय संस्था को शुल्क का भुगतान करना होता है। उसी प्रकार, धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही से व्यथित उधारकर्ता एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत करने का अधिकारी था। इसी प्रकार, उधारकर्ता एनपीए

अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपील प्रस्तुत करने का भी अधिकारी था। ऐसी अपीलों के लिए उधारकर्ता को ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 20 तथा ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1994 ("1994 के नियम") के नियम 8 के अधीन विहित शुल्क का भुगतान करना आवश्यक था। किन्तु केन्द्रीय सरकार ने यह पाया कि धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही को आगे चुनौती देने वाला उधारकर्ता भी न्यायालय शुल्क के भुगतान के दायित्व से ग्रस्त है, जिससे व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं। अतः उसने एनपीएयों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन (कठिनाइयों का निवारण) आदेश, 2004 ("आदेश 2004"), एनपीए अधिनियम की धारा 40 के अधीन जारी किया, ताकि उक्त अधिनियम की धारा 17 तथा धारा 18 के अधीन आवेदन अथवा अपील प्रस्तुत करने पर शुल्क अधिरोपित किए जाने का प्रावधान किया जा सके। उक्त आदेश, 2004 की विषय-वस्तु निम्नलिखित है :

> "अतः अब, उक्त अधिनियम की धारा 40 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार, उक्त अधिनियम के उपबंधों से असंगत न होते हुए, धारा 17 तथा धारा 18 के अधीन अपीलों के प्रस्तुतीकरण पर शुल्क अधिरोपित किए जाने से संबंधित कठिनाई को दूर करने के लिए निम्नलिखित आदेश जारी करती है, अर्थात् :
>
> 1. *संक्षिप्त नाम तथा प्रवर्तन-* (i) इस आदेश को 'एनपीएयों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन (कठिनाइयों का निवारण) आदेश, 2004' कहा जाएगा।
>
> (ii) यह तत्काल प्रभाव से प्रवृत्त होगा।
>
> 2. *परिभाषा-* 'ऋण वसूली न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993' से अभिप्रेत वे नियम हैं जो बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम,

1993 की धारा 9 तथा धारा 36 की उपधारा (2) के खंड (ङ) के अधीन बनाए गए हैं।

3. *ऋण वसूली न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत करने का शुल्क-* एनपीएयों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत करने का शुल्क, ऋण वसूली न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने के लिए विहित शुल्क के अनुरूप आवश्यक परिवर्तनों सहित देय होगा।

4. *ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत करने का शुल्क-* एनपीएयों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 18(1) के अधीन ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील प्रस्तुत करने का शुल्क, ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1994 के नियम 8 के अधीन अपील प्रस्तुत करने के लिए विहित शुल्क के अनुरूप *आवश्यक परिवर्तनों* सहित देय होगा।"

यह उल्लेखनीय है कि उक्त आदेश, 2004 दिनांक 06.04.2004 से प्रभावी हुआ था। यह आदेश संशोधन अधिनियम संख्या 30, वर्ष 2004 के दिनांक 11.11.2004 से प्रवर्तन में आने के पश्चात भी प्रभावी बना रहा। जैसा कि ऊपर उल्लेखित है, संशोधन अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा ऐसे किसी भी व्यक्ति, जिसमें उधारकर्ता भी सम्मिलित है, को, जो धारा 13(4) के अधीन प्रतिभूति ऋणदाता द्वारा अपनाए गए किसी उपाय से व्यथित हो, उसे चुनौती देने का वैधानिक अवसर प्रदान किया गया, बशर्ते कि वह अपने आवेदन के साथ विहित शुल्क का भुगतान करे। यह शुल्क विहित विधि से अधिरोपित किया जाना है। एनपीए अधिनियम की धारा 2(स) में "विहित" शब्द को ऐसे नियमों द्वारा विहित माना गया है जो उक्त अधिनियम के अधीन बनाए गए हों। आज तक धारा 17(1) के अधीन न्यायाधिकरण में

आवेदन प्रस्तुत करने हेतु न्यायालय शुल्क निर्धारित करने वाले कोई नियम नहीं बनाए गए हैं। आज भी वर्ष 2004 का उक्त आदेश प्रभावी है, जिसके प्रभाव पर आगे विचार किया जाएगा।

निर्धारण हेतु बिंदु :

इन वादों में निम्नलिखित तीन बिंदु विचारणीय हैं :

(i) क्या बैंक अथवा वित्तीय संस्थाएँ, जिन्होंने ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 के अधीन उपलब्ध उपाय का चयन कर लिया है, फिर भी ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित मूल आवेदन को वापस लिए अथवा त्यागे बिना, प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों के साकारण हेतु एनपीए अधिनियम, 2002 का सहारा ले सकती हैं।

(ii) क्या एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन उधारकर्ता की प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों का कब्जा लेने का अधिकार, अचल संपत्ति का वास्तविक कब्जा ग्रहण करने की शक्ति को भी समाहित करता है।

(iii) क्या ऋण वसूली न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के अधीन विहित *मूल्याधारित* न्यायालय शुल्क, एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन आवेदन पर, उस अधिनियम के अधीन कोई नियम निर्मित न होने की स्थिति में भी देय है।

निष्कर्ष :

(i) बिंदु संख्या 1 के संबंध में :

मुख्य वाद में अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के. एस. विश्वनाथन ने तर्क तर्क दिया कि बैंक अथवा वित्तीय संस्थाओं को एनपीए अधिनियम के

अधीन उपलब्ध उपाय का सहारा लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जब वे पहले ही ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के अधीन अधिकारिता का आह्वान कर चुके हों। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि प्रतिवादी-बैंक (इंडियन ओवरसीज बैंक) के लिए यह अनिवार्य था कि वह एनपीए अधिनियम के अधीन कार्यवाही प्रारम्भ करने से पूर्व ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित मूल आवेदन संख्या 354/99 को वापस लेता। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अधीन दिनांक 06.01.2003 को इंडियन ओवरसीज बैंक द्वारा जारी नोटिस मात्र कारण बताओ सूचना थी; वह ऐसी कार्रवाई नहीं थी जिससे ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 की धारा 19(1) के परंतुक की प्रयोज्यता समाप्त हो जाए; फलतः, उनका कहना था कि मेसर्स ट्रांसकोर से संबंधित वर्तमान मामले में बैंक को एनपीए अधिनियम का सहारा लेने से पूर्व मूल आवेदन संख्या 354/99 को वापस लेने की अनुमति ऋण वसूली न्यायाधिकरण से प्राप्त करनी चाहिए थी। इस पक्ष को विस्तार देते हुए उन्होंने कहा कि एनपीए अधिनियम का उद्देश्य न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना प्रतिभूति हित का प्रवर्तन करना है और इसका आशय यह है कि यदि पहले से ही मूल आवेदन के माध्यम से न्यायिक हस्तक्षेप का मार्ग अपनाया गया है, तो एनपीए अधिनियम का सहारा लेने से पूर्व उस मार्ग को समाप्त करना आवश्यक है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) में संशोधन अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा जो परंतुक जोड़ा गया, उसका उद्देश्य भी यही था। इस संदर्भ में उन्होंने परंतुक के शब्दों पर बल दिया, जिसमें कहा गया है कि यदि एनपीए अधिनियम के अधीन पूर्व में कोई ऐसी कार्रवाई न की गई हो, तो बैंक अथवा वित्तीय संस्था ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति से मूल आवेदन वापस लेकर एनपीए अधिनियम के अधीन कार्रवाई कर सकती है। उन्होंने विशेष रूप से यह रेखांकित किया कि धारा 13(2) के अधीन दिनांक 06.01.2003 की सूचना मात्र कारण बताओ सूचना थी; वह उक्त परंतुक के अर्थ में कार्रवाई नहीं थी। अतः वर्तमान मामले में बैंक के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरण से

अनुमति प्राप्त करना आवश्यक था। इसी प्रकार उन्होंने यह भी तर्क दिया कि परंतुक में प्रयुक्त शब्द एनपीए अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने के उद्देश्य से संपूर्ण रूप से पढ़े जाने पर उपचारों के चयन के सिद्धांत की प्रयोज्यता को दर्शाते हैं। उनके अनुसार, उक्त परंतुक के अधिनियमन का उद्देश्य ही यह था कि बिना ऋण वसूली न्यायाधिकरण की अनुमति के दो समानान्तर प्रक्रियाएँ एक साथ संचालित न की जा सकें। उनका यह भी कहना था कि धारा 19(1) के द्वितीय परंतुक में *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित है कि मूल आवेदन वापस लेने की अनुमति हेतु बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा प्रस्तुत आवेदन का यथाशीघ्र निस्तारण किया जाएगा। उन्होंने इस उपबंध पर भी बल देते हुए कहा कि यदि बैंक अथवा वित्तीय संस्थाओं को दोनों उपायों का एक साथ उपयोग करने की अनुमति दी जाए, तो शीघ्र निस्तारण का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। उन्होंने आगे यह भी कहा कि जब वर्ष 2002 में एनपीए अधिनियम अधिनियमित हुआ था, तब धारा 13(3-क) तथा ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 19 के परंतुक विधि-पुस्तक में विद्यमान नहीं थे। तथापि, विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान इस न्यायालय के निर्णय *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) की कंडिका 80 की ओर आकृष्ट किया, जिसमें कहा गया है कि कोई भी कार्रवाई किए जाने से पूर्व साठ दिनों की सूचना देना आवश्यक था तथा एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन उपाय किए जाने के पश्चात् एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण का आश्रय लेने हेतु एक तंत्र प्रदान किया गया था। उपर्युक्त उपबंधों का उद्देश्य उधारकर्ता को युक्तिसंगत संरक्षण प्रदान करना था। उक्त निर्णय की कंडिका 80 पर निर्भर करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उक्त कंडिका में इस न्यायालय ने "कार्रवाई" शब्द का प्रयोग धारा 13(4) के अधीन अपनाए गए "उपायों" के संदर्भ में किया है, अतः स्वयं इस न्यायालय ने भी धारा 13(2) के अधीन दी गई सूचना को की गई "कार्रवाई" नहीं माना था। विद्वान अधिवक्ता का तर्क था कि एनपीए अधिनियम की धारा 13 के अधीन "की गई कार्रवाई" केवल वे कदम हो सकते हैं जो बैंक अथवा वित्तीय संस्था द्वारा धारा 13(4) के अधीन उठाए

गए हों और इसलिए धारा 13(2) के अधीन साठ दिनों की सूचना मात्र कारण बताओ सूचना थी, जो की गई कार्रवाई नहीं मानी जा सकती थी, और फलतः ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) का परंतुक वर्तमान वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, जिसमें मेसर्स ट्रांसकोर अपीलकर्ता है, लागू होता था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि चूँकि उक्त परंतुक का अनुपालन नहीं किया गया था, अतः इंडियन ओवरसीज़ बैंक एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने का अधिकारी नहीं था, जैसा कि उसने दिनांक 08.01.2005 की सूचना द्वारा करने का प्रयत्न किया। धारा 13(3-क) के उपबंधों पर भी निर्भरता व्यक्त की गई, जो उधारकर्ता को प्रतिभूत ऋणदाता के समक्ष अभ्यावेदन अथवा आपत्ति प्रस्तुत करने का अधिकार प्रदान करते हैं, तथा यदि प्रतिभूत ऋणदाता ऐसे अभ्यावेदन को अस्वीकार कर देता है, तो परंतुक यह उपबंधित करता है कि इस प्रकार संप्रेषित कारण उधारकर्ता को धारा 17 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करेंगे। परंतुक में प्रयुक्त शब्द यह हैं कि कारणों के संप्रेषण के चरण पर भी प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा संभावित कार्रवाई उधारकर्ता को धारा 17 के अधीन ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी। एक बार पुनः उक्त परंतुक में "कार्रवाई" शब्द पर बल देते हुए यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया कि धारा 13(2) के अधीन सूचना, संशोधित धारा 13 की योजना के अंतर्गत "कार्रवाई" शब्द से भिन्न है। विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि धारा 13(3-क) कारणों के संप्रेषण संबंधी आदेश अथवा प्रतिभूत ऋणदाता की *संभावित कार्रवाई* के विरुद्ध अपील पर रोक लगाती है। चूँकि अभ्यावेदन अस्वीकार किए जाने के आदेश के विरुद्ध कोई अपील उपलब्ध नहीं है तथा एनपीए अधिनियम की धारा 17 उधारकर्ता को केवल धारा 13(4) के अधीन की गई कार्रवाई के विरुद्ध ही उपचार प्रदान करती है, इसलिए धारा 13 की योजना यह इंगित करती है कि धारा 13(2) के अधीन सूचना को केवल कारण बताओ सूचना के रूप में ही पढ़ा जाना चाहिए। इसी प्रकार, विद्वान अधिवक्ता ने एनपीए अधिनियम की धारा 13(10) के उपबंधों पर भी

निर्भरता व्यक्त की, जिसमें कहा गया है कि जहाँ प्रतिभूत ऋणदाता की देय राशि पूर्णतः संतुष्ट नहीं होती, वहाँ प्रतिभूत ऋणदाता शेष राशि की वसूली हेतु ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(1) यह दर्शाती है कि प्रतिभूति हित के प्रवर्तन हेतु एक साथ कार्यवाही किए जाने की परिकल्पना एनपीए अधिनियम में नहीं की गई थी। यह भी तर्क दिया गया कि वैचारिक रूप से ऋण के अधिकार और उसकी वसूली हेतु कार्रवाई करने के अधिकार में अंतर है; ये दोनों पूर्णतः भिन्न अवधारणाएँ हैं; एक प्राप्ति का अधिकार है और दूसरा प्रवर्तन का अधिकार। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण और उसकी वसूली हेतु वाद का अधिकार एक ही वस्तु नहीं हैं; ऋण अपने कठोर विधिक अर्थ में देनदार के भुगतान करने के कर्तव्य के अनुरूप एक अधिकार है, जबकि वाद का अधिकार एक ऐसी विधिक सत्ता है जो देनदार की वादग्रस्त होने की दायित्वता के अनुरूप होती है। अतः विद्वान अधिवक्ता के अनुसार ये दोनों पृथक अवधारणाएँ हैं, जिसका प्रमाण यह है कि वाद का अधिकार परिसीमा के कारण समाप्त हो सकता है जबकि ऋण बना रहता है। इन अवधारणाओं को एनपीए अधिनियम के क्षेत्र पर लागू करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम केवल बैंक अथवा वित्तीय संस्था को ऋण की वसूली लागू कराने के लिए कुछ शक्तियाँ प्रदान करता है और इसी उद्देश्य से वह संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 69 को, उसमें निर्दिष्ट कुछ कार्यों के संबंध में, अपवर्जित करता है। अतः यह तर्क दिया गया कि जब धारा 13(2) के अधीन सूचना जारी की जाती है, तब वह केवल उस ऋणाधिकार की पुनरावृत्ति करती है जो पहले से ही प्रतिभूत ऋणदाता को प्राप्त हो चुका है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के परंतुक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द हैं "यदि ऐसी कोई कार्रवाई पूर्व में नहीं की गई हो"। विद्वान अधिवक्ता ने इन शब्दों पर निर्भर करते हुए यह तर्क दिया कि जहाँ वसूली पहले ही प्रवर्तित हो चुकी हो, वहाँ मूल आवेदन वापस लेने की आवश्यकता नहीं रहती। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 13(2) के अधीन मात्र सूचना देना वसूली

की प्रक्रिया की पूर्णता को इंगित नहीं करता। अतः धारा 13(2) की सूचना मात्र कारण बताओ सूचना है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार धारा 19 का परंतुक केवल उन पूर्ण मामलों की बात करता है जहाँ प्रवर्तन की शक्ति समाप्त हो चुकी हो। यह शक्ति धारा 13(2) की सूचना मात्र जारी कर देने से समाप्त नहीं होती। धारा 13(4) के अधीन पूर्ण कार्रवाई के बिना धारा 13(2) के अधीन सूचना जारी किया जाना उक्त परंतुक द्वारा संरक्षित नहीं होगा। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(2) किसी कार्रवाई का निहित अधिकार उत्पन्न नहीं करती और इसलिए उस सूचना के विरुद्ध कोई उपचार भी उपलब्ध नहीं कराया गया है। अपने उक्त तर्कों के समर्थन में उन्होंने एनपीए अधिनियम की धारा 13(13) पर भी निर्भरता व्यक्त की, जिसमें यह उपबंधित है कि धारा 13(2) के अधीन सूचना प्राप्त होने के पश्चात् कोई भी उधारकर्ता, प्रतिभूत ऋणदाता की पूर्व लिखित सहमति के बिना, अपने किसी भी प्रतिभूत आस्ति का विक्रय, पट्टा या अन्य किसी प्रकार से अंतरण नहीं करेगा, सिवाय उसके जो व्यवसाय के सामान्य क्रम में हो। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(13) प्रतिभूत आस्तियों को व्यवसाय के सामान्य क्रम में निपटाने की अनुमति देती है और परिणामतः धारा 13(2) की सूचना को अधिनियम के अधीन की गई कार्रवाई नहीं माना जा सकता, जैसा कि बैंकों द्वारा तर्क किया गया है। वैकल्पिक रूप से यह तर्क भी तर्क दिया गया कि यदि केवल तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि धारा 13(2) की सूचना कार्रवाई करने का अधिकार उत्पन्न करती है, तब भी ऐसा अधिकार निहित अधिकार नहीं है, बल्कि अधिक से अधिक एक सशर्त अधिकार है, जो अन्य कारकों पर निर्भर करता है, जैसे कि अभ्यावेदन प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् भी प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा कार्रवाई को जारी रखना। ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 का परंतुक केवल एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन पूर्ण की जा चुकी कार्रवाई की बात करता है, ताकि समाप्त हो चुके लेन-देन पुनः न खोले जाएँ। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिकार तभी निहित होता है जब उससे संबंधित सभी आवश्यक तथ्य घटित हो चुके हों, जबकि अधिकार सशर्त होता है जब कुछ,

किन्तु सभी नहीं, आवश्यक तथ्य घटित हुए हों। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(2) अधिकतम एक प्रारंभिक अवस्था के अधिकार का उल्लेख करती है; धारा 13(4) केवल धारा 13(2) में निर्दिष्ट अवधि के संदर्भ में उसका उल्लेख करती है; तथा धारा 13(3-क) के प्रविष्ट किए जाने से पूर्व अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का कोई अवसर उपलब्ध नहीं था और फलतः धारा 13(2) की सूचना केवल कारण बताओ सूचना ही है।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 का परंतुक निर्वाचन के सिद्धांत की वैधानिक मान्यता है; यह दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 में वर्णित साधारण प्रत्याहरण की प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि धारा 19 का परंतुक यह उपबंधित करता है कि मूल आवेदन का प्रत्याहरण एनपीए अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने के उद्देश्य से किया जाता है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(25) के आलोक में यह नहीं कहा जा सकता कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण के पास अंतर्निहित शक्तियाँ नहीं हैं। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि निर्वाचन का सिद्धांत प्रतिषेध के नियम की एक शाखा है। यह तर्क दिया गया कि उक्त सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि जब एक ही राहत के लिए दो उपचार उपलब्ध हों, तब व्यथित पक्षकार को उन दोनों में से किसी एक का चयन करने का विकल्प होता है, परंतु दोनों का एक साथ नहीं। इस संदर्भ में इस न्यायालय के निर्णय, *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मस्तान एवं अन्य,* [2006] 2 एससीसी 641 तथा *आंध्र प्रदेश राज्य वित्तीय निगम बनाम मेसर्स गार री-रोलिंग मिल्स एवं अन्य,* [1994] 2 एससीसी 647 पर निर्भरता व्यक्त की गई। अतः विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 19(1) का परंतुक यह अनिवार्य करता है कि एक समय में दोनों उपचारों में से केवल एक का ही आश्रय लिया जा सकता है, दोनों का नहीं। वैधानिक हस्तक्षेपों को दृष्टिगत रखते हुए, प्रतिभूत ऋणदाता के पास उन मामलों में, जहाँ ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) का परंतुक लागू होता है,

ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित कार्यवाही को वापस लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है।

अपीलकर्ता (मेसर्स ट्रांसकोर) की ओर से प्रस्तुत उपर्युक्त तर्कों को मेसर्स नेमत राम बत्रा(दीवानी अपील संख्या 2841/2006 में प्रत्यर्थी) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज गुप्ता तथा मेसर्स कल्याणी सेल्स कंपनी (दीवानी अपील संख्या 908/2006 में प्रत्यर्थी) की ओर से उपस्थित श्री ए.के. जायसवाल द्वारा भी अंगीकृत किया गया।

उपर्युक्त निवेदनों के प्रत्युत्तर में, इंडियन ओवरसीज़ बैंक (बैंक) की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के.एन. भट्ट ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) को प्रवर्तित करने के लिए धारा 13(2) के अधीन नोटिस एक पूर्वापेक्षित शर्त है और इसलिए उक्त नोटिस एक कार्रवाई है, मात्र कारण बताओ नोटिस नहीं। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(2) का नोटिस एनपीए अधिनियम के अध्याय-III के अधीन प्रतिभूति हित के प्रवर्तन हेतु सहायक कदम है। उन्होंने तर्क दिया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) का परंतुक एनपीए अधिनियम के अधीन बैंक/वित्तीय संस्थान के अधिकारों को प्रभावित नहीं कर सकता, क्योंकि एनपीए अधिनियम केवल वसूली तथा प्रतिभूति हित के प्रवर्तन से संबंधित है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(2) का नोटिस इस आधार पर जारी किया जाता है कि ग्राहक का खाता, जो बैंक की लेखा पुस्तकों में बैंक की परिसंपत्ति है क्योंकि उसके अंतर्गत प्राप्त की जाने वाली राशि देय है, अवमानक, संदिग्ध अथवा हानि परिसंपत्ति बन चुका है; धारा 13(2) खाते के एनपीए के रूप में वर्गीकृत किए जाने के आधार पर कार्य करती है; तथा धारा 13(2) के अधीन किसी प्रकार के न्यायनिर्णयन की परिकल्पना नहीं की गई है, क्योंकि उक्त धारा केवल प्रतिभूति हित के प्रवर्तन से संबंधित है, जिसे अधिनियम बैंक/वित्तीय संस्थान की वित्तीय परिसंपत्ति के रूप में मान्यता देता है। इन परिस्थितियों में विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(2) का नोटिस मात्र कारण बताओ नोटिस नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम का उद्देश्य प्रतिभूत

ऋणदाता को न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना किसी भी प्रतिभूति हित का प्रवर्तन करने में सक्षम बनाना है, साथ ही परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी तथा प्रतिभूतिकरण कंपनी की स्थापना का भी प्रावधान करना है। इस संदर्भ में यह इंगित किया गया कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(4)(क) बैंक/वित्तीय संस्थान को प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा लेने की अनुमति देती है। इसी प्रकार धारा 13(4)(ख) बैंक/वित्तीय संस्थान को उधारकर्ता के व्यवसाय का प्रबंधन अपने अधीन लेने में सक्षम बनाती है। इसी प्रकार धारा 13(4)(ग) उस प्रतिभूत परिसंपत्ति के प्रबंधन हेतु प्रबंधक नियुक्त करने की अनुमति देती है, जिसका कब्जा लिया जा चुका है; तथा धारा 13(4)(घ) प्रतिभूत ऋणदाता को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह प्रतिभूत परिसंपत्तियों के किसी हस्तांतरणी को मात्र एक प्रत्यावर्तन सूचना द्वारा निर्दिष्ट राशि का भुगतान प्रतिभूत ऋणदाता को करने का निर्देश दे सके। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, धारा 13(4) की योजना के अंतर्गत इन सभी शक्तियों का प्रयोग न्यायालय/न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना किया जाना है। उन्होंने तर्क दिया कि यदि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के परंतुक को अनिवार्य माना जाए, तो उसका परिणाम यह होगा कि प्रतिभूत ऋणदाता केवल ऋण वसूली न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति प्राप्त करने के पश्चात ही धारा 13 का आश्रय ले सकेगा, जिससे एनपीए अधिनियम का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा, जिसका उद्देश्य प्रतिभूत ऋणदाता के प्रवर्तन अधिकार पर विद्यमान सभी बंधनों को समाप्त करना है। इसके पश्चात यह तर्क दिया गया कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण के पास अंतर्निहित शक्तियाँ नहीं हैं तथा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(25), जो न्यायाधिकरण को अपने आदेशों के प्रवर्तन हेतु उपयुक्त निर्देश जारी करने का अधिकार देती है, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के समकक्ष नहीं है। अतः उसके अनुरूप एक विशेष उपबंध का अधिनियम में जोड़ा जाना आवश्यक था। इस संदर्भ में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में आदेश 23, दीवानी प्रक्रिया संहिता के समान कोई उपबंध नहीं था

और इस कमी को दूर करने के लिए उक्त अधिनियम में संशोधन किया गया। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 19 का परंतुक एक सक्षमकारी उपबंध है। बैंक/वित्तीय संस्थान उन मामलों में ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन वापस लेने हेतु आवेदन कर सकता है, जहाँ न्यायाधिकरण ने न्यायालय अभिरक्षक नियुक्त किया हो अथवा कुर्की या निषेधाज्ञा प्रदान की हो। यदि बैंक/वित्तीय संस्थान ऐसी वित्तीय परिसंपत्ति के संबंध में एनपीए अधिनियम का आश्रय लेना चाहता है, जो न्यायालय अभिरक्षक के कब्जे में हो अथवा जिस पर कुर्की लागू हो, तो ऐसी स्थिति में एक सक्षमकारी उपबंध किया गया है, जिसके अंतर्गत बैंक या वित्तीय संस्थान मूल आवेदन को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से वापस लेने की अनुमति प्राप्त करने हेतु न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन कर सकता है, ताकि वह एनपीए अधिनियम के अधीन प्रतिभूति के प्रवर्तन के लिए उपयुक्त कदम उठा सके। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालयों ने अपने आक्षेपित निर्णयों द्वारा उक्त परंतुक को अनिवार्य/बाध्यकारी मानकर त्रुटि की है। उनका तर्क था कि यदि इस परंतुक को अनिवार्य माना जाए तो इसका उद्देश्य ही निष्फल हो जाएगा। उन्होंने तर्क दिया कि बैंक/वित्तीय संस्थान किसी भी समय मूल आवेदन के संबंध में प्रत्याहरण आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। परंतुक केवल उन परिस्थितियों से निपटने हेतु जोड़ा गया है, जहाँ परिसंपत्तियाँ न्यायालय अभिरक्षक के कब्जे में हों अथवा कुर्की/निषेधाज्ञा के अधीन हों। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि दोनों अधिनियमों के एक साथ लागू होने पर कोई निषेध नहीं है। उनके अनुसार, एनपीए अधिनियम बैंक/वित्तीय संस्थान को एक स्वतंत्र अधिकार प्रदान करता है और जहाँ आवश्यक हो, बैंक/वित्तीय संस्थान प्रतिभूत ऋणदाता को प्रदत्त उस विकल्प का प्रयोग कर सकता है। इस संदर्भ में उन्होंने यह भी इंगित किया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के तृतीय परंतुक के अधीन वाद/आवेदन का आंशिक प्रत्याहरण भी अनुमन्य है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(10) के अनुसार, जहाँ प्रतिभूत ऋणदाता के बकाए प्रतिभूत परिसंपत्तियों के विक्रय प्रतिफल से पूर्णतः संतुष्ट नहीं होते, वहाँ बैंक/वित्तीय संस्थान

शेष राशि की वसूली हेतु उधारकर्ता के विरुद्ध ऋण वसूली न्यायाधिकरण में आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। जिस बिंदु पर विशेष बल दिया गया, वह यह था कि वादों के आंशिक प्रत्याहरण अथवा शेष राशि की वसूली हेतु ऋण वसूली न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार का पुनः आश्रय लेना, ऐसे विषय हैं जिनके लिए ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम तथा एनपीए अधिनियम दोनों में संशोधन करना आवश्यक था, ताकि उनके उपबंधों को दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के अनुरूप बनाया जा सके। यही धारा 19(1) के प्रथम परंतुक को जोड़े जाने का मुख्य उद्देश्य था। वास्तव में, विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि संशोधन अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम तथा एनपीए अधिनियम दोनों में एक साथ संशोधन किए गए, जो यह दर्शाता है कि दोनों अधिनियम परस्पर पूरक हैं। उन्होंने तर्क दिया कि प्रथम परंतुक के अधीन सक्षमकारी उपबंध इसलिए जोड़ा गया कि मूल आवेदन का प्रत्याहरण केवल उन मामलों तक सीमित रहे, जहाँ बैंक/वित्तीय संस्थान एनपीए अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने के उद्देश्य से मूल आवेदन वापस लेना चाहता हो, न कि किसी अन्य उद्देश्य से। यह भी इंगित किया गया कि दीवानी प्रक्रिया संहिता का आदेश 23 विभिन्न परिस्थितियों को आच्छादित करता है, जबकि धारा 19 का परंतुक केवल कुछ विशिष्ट पक्षों/परिस्थितियों से संबंधित है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 13(10) एक नवीन वाद हेतु प्रदान करती है। संपूर्ण बकाया राशि की वसूली न हो पाना, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन कार्यवाही के लिए कोई नया वाद हेतु उत्पन्न नहीं करता। ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन कार्यवाही का वाद हेतु तो देय ऋण ही है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, बकाया राशि का पूर्णतः संतुष्ट न होना ऐसा वाद हेतु नहीं है जिसे उधारकर्ता के कृत्य से उत्पन्न माना जा सके। अतः उन्होंने तर्क दिया कि धारा 19(1) का परंतुक एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने की पूर्व शर्त नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे इंगित किया कि एनपीए अधिनियम की धारा 36 परिसीमा से संबंधित है। धारा 36 स्पष्ट करती है कि एनपीए अधिनियम के अधीन कोई

भी कार्रवाई तब तक नहीं की जा सकती जब तक दावा परिसीमा के भीतर न हो। अतः विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन कार्यवाही में व्यतीत समय को परिसीमा से बाहर नहीं रखा जाता और न ही वह परिसीमा की अवधि को स्थगित करता है। इसलिए यह पहलू भी इस बात की ओर संकेत करता है कि धारा 19(1) का परंतुक एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने की पूर्व शर्त नहीं है। निर्वाचन के सिद्धांत के संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह सिद्धांत प्रतिषेध का एक पक्ष है, जिसका किसी विधि के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि यह सुस्थापित विधि है कि किसी विधि के विरुद्ध प्रतिषेध लागू नहीं हो सकता। अतः विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालयों द्वारा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के परंतुक की जो व्याख्या की गई है, जिसके अनुसार बैंकों/वित्तीय संस्थानों के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरण की पूर्व अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है, वह एनपीए अधिनियम को ही निरर्थक बना देगी।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उधारकर्ताओं की ओर से यह जो दलील दी गई है कि अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में किए गए संशोधनों ने एनपीए अधिनियम के अधीन प्रतिभूत ऋणदाताओं के अधिकारों को सीमित कर दिया है, उसमें कोई सार नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि इस तर्क का कोई आधार नहीं है, क्योंकि एनपीए अधिनियम के अधीन प्रतिभूत ऋणदाताओं के किसी भी अधिकार को सीमित करने वाला कोई संशोधन नहीं किया गया है। उन्होंने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम प्रतिभूत ऋणदाताओं से संबंधित है, जिनमें बैंक, वित्तीय संस्थान तथा धारा 2(जेडडी) में उल्लिखित व्यक्ति सम्मिलित हैं। उन्होंने आगे इंगित किया कि "प्रतिभूति हित", जिससे एनपीए अधिनियम संबंधित है, में बंधक, प्रभार, हाइपोथिकेशन आदि सम्मिलित हैं, सिवाय उन प्रतिभूतियों के जो धारा 31 में निर्दिष्ट हैं, जिसके द्वारा दस प्रकार की प्रतिभूतियों को एनपीए अधिनियम के दायरे से बाहर रखा गया है। उन्होंने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम एक विशेष अधिनियम है, जिसके उपबंध उससे असंगत अन्य सभी विधियों पर अधिरोहित

प्रभाव रखते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने एनपीए अधिनियम की धारा 35 पर निर्भरता व्यक्त की। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा एनपीए अधिनियम तथा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम दोनों में एक साथ संशोधन किए गए; उक्त अधिनियम द्वारा विशेष रूप से धारा 13 में उपधारा (3-क) जोड़कर संशोधन किया गया, परंतु धारा 19 के परंतुक के समतुल्य कोई उपबंध एनपीए अधिनियम में नहीं जोड़ा गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि संसद का आशय ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के माध्यम से एनपीए अधिनियम के अधीन प्रतिभूत ऋणदाताओं को प्रदत्त अधिकारों को कमजोर करना नहीं था। उन्होंने हमारा ध्यान एनपीए अधिनियम की धारा 37 की ओर भी आकर्षित किया, जिसमें यह उपबंधित है कि एनपीए अधिनियम, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अतिरिक्त होगा, उसके अपवादस्वरूप नहीं। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 19(1) का परंतुक ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए जोड़ा गया था; यह उपबंध दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के अनुरूप है, जिसका मूल ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में अभाव था। पूर्वोक्तानुसार, विद्वान अधिवक्ता ने पुनः तर्क दिया कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण, न्यायालय के विपरीत, अंतर्निहित शक्तियाँ नहीं रखता। उन्होंने तर्क दिया कि ऐसी असंख्य परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें प्रतिभूत ऋणदाता को अपनी वसूली आवेदन वापस लेने की आवश्यकता पड़े और यदि कोई विशिष्ट उपबंध न हो, तो न्यायाधिकरण के लिए प्रत्याहरण आवेदन पर विचार करना संभव न होता। किसी भी दशा में, स्पष्ट वैधानिक उपबंध के अभाव में, प्रत्याहरण आवेदन पर सशर्त आदेश पारित करना भी न्यायाधिकरण के लिए संभव नहीं था; ऐसा उपबंध अब ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) के परंतुक के रूप में उपलब्ध है। अतः इस कमी को दूर करने के लिए धारा 19(1) में परंतुक जोड़ा गया। उक्त परंतुक स्पष्ट करता है कि मूल आवेदन का प्रत्याहरण केवल एनपीए अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने के उद्देश्य तक सीमित रहेगा। यह भी स्पष्ट करता है कि ऐसा प्रत्याहरण आवेदन तभी किया जा सकता है जब प्रत्याहरण की मांग

से पूर्व एनपीए अधिनियम के अधीन कोई कार्रवाई न की गई हो। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उक्त परंतुक न तो 11.11.2004 से पूर्व और न ही उसके पश्चात, एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने से पहले मूल आवेदन वापस लेना अनिवार्य बनाता है। उन्होंने तर्क दिया कि यदि धारा 19(1) के परंतुक को एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने की पूर्व शर्त के रूप में पढ़ा जाए, तो उसके गंभीर प्रतिकूल परिणाम होंगे। उदाहरणार्थ, किसी मामले में प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध भी राहत की मांग की गई हो सकती है तथा वे प्रत्याभूतिदाता किसी एक संघ लेन-देन से ही संबंधित हो सकते हैं। ऐसे में ऋणदाता को ऋण वसूली न्यायाधिकरण में लंबित आवेदन वापस लेने के लिए बाध्य करना, वस्तुतः उसे प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध अपने दावे का भी परित्याग करने के लिए विवश करना होगा। इसी प्रकार, यदि बंधक संपत्ति किसी कुर्की अथवा न्यायालय अभिरक्षक के अधीन न हो, तो धारा 13(4) का आश्रय लेने से पूर्व आवेदन वापस लेने की अनुमति प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। किंतु यदि उधारकर्ताओं की दलील स्वीकार कर ली जाए, तो बैंक/वित्तीय संस्थान को उन मामलों में भी न्यायाधिकरण से अनुमति प्राप्त करने हेतु आवेदन करना पड़ेगा, जहाँ उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। अंततः, एनपीए अधिनियम के अधीन की गई कार्रवाई में व्यतीत समय को शेष राशि की वसूली हेतु परिसीमा बचाने के लिए अपवर्जित नहीं किया जाता। बैंकों/वित्तीय संस्थानों को एनपीए अधिनियम की धारा 13(10) के अधीन परिसीमा अवधि के भीतर पुनः ऋण वसूली न्यायाधिकरण का आश्रय लेना होता है। यदि बैंकों/वित्तीय संस्थानों को पहले अपने मूल आवेदन वापस लेने के लिए बाध्य किया जाए, तो मांग नोटिस जारी करने से लेकर प्रतिभूतियों की बिक्री तक की संपूर्ण प्रतिभूतिकरण प्रक्रिया परिसीमा अवधि के भीतर पूर्ण करनी होगी। यदि वे ऐसा करने में असफल रहते हैं, तो वे पुनः ऋण वसूली न्यायाधिकरण का आश्रय नहीं ले सकेंगे। किसी विशेष मामले में यदि ऋण वसूली न्यायाधिकरण प्रत्याहरण की अनुमति देने से इंकार कर दे, तो एनपीए अधिनियम का पूरा उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। एनपीए अधिनियम को ऋण वसूली न्यायाधिकरण की पूर्व

अनुमति पर निर्भर बना देने से वह अधिनियम ही निरर्थक हो जाएगा। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 24, परिसीमा अधिनियम, 1963 को न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत दावों पर लागू करती है। इसका अर्थ यह है कि लंबित वसूली आवेदन के प्रत्याहरण की अनुमति मिलने तक, एनपीए अधिनियम की धारा 13(10) के अधीन प्रस्तुत किया जाने वाला आवेदन परिसीमाबाधित हो सकता है। अतः यदि बैंकों/वित्तीय संस्थानों को धारा 13 का आश्रय लेने से पूर्व अपने वसूली आवेदन वापस लेने के लिए बाध्य किया जाए, तो वे धारा 13(10) के अधीन शेष राशि की वसूली के अपने अधिकार से वंचित हो जाएंगे। इस संदर्भ में एनपीए अधिनियम की धारा 36 पर भी निर्भरता व्यक्त की गई, जो यह अपेक्षा करती है कि एनपीए अधिनियम के अधीन दावा परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर किया जाए। अतः विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता का यह तर्क कि बैंकों/वित्तीय संस्थानों को एनपीए अधिनियम की धारा 13 का आश्रय लेने से पूर्व अपने मूल आवेदन अवश्य वापस लेने चाहिए, पूर्णतः निराधार है।

भारतीय बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सोली जे. सोराबजी ने तर्क दिया कि उपचारात्मक अनुतोष के मामलों में निर्वाचन का सिद्धांत लागू नहीं होता। उन्होंने तर्क दिया कि कोई ऋणदाता, जब तक किसी वैधानिक उपबंध अथवा निर्वाचन के सिद्धांत द्वारा प्रतिबंधित न किया गया हो, अपने लिए उपलब्ध एक अथवा अधिक संचयी उपचारों का चयन करने का अधिकारी है; और ऐसे किसी निषेध के अभाव में, ऋणदाता के लिए एक या अधिक संचयी उपचारों का आश्रय लेना विधिसम्मत है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की योजना के अंतर्गत बैंक/वित्तीय संस्थान पर कोई ऐसी अक्षमता नहीं है कि वह ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 का आश्रय लेने के पश्चात् एनपीए अधिनियम की धारा 13 के अधीन कार्यवाही न कर सके। उन्होंने कहा कि दोनों धाराओं का उद्देश्य बकाया राशि की वसूली करना है; दोनों उपचारों में न तो कोई

अंतर्निहित और न ही निहित असंगति है; निर्वाचन का सिद्धांत केवल उन स्थितियों में लागू होता है जहाँ उपचार परस्पर असंगत हों। उन्होंने तर्क दिया कि वर्तमान मामले में दोनों उपचार परस्पर असंगत नहीं हैं। उन्होंने कहा कि इस न्यायालय का निर्णय, *आंध्र प्रदेश राज्य वित्त निगम* (उपरोक्त), वर्तमान मामले में लागू नहीं होता, क्योंकि उस मामले में यह न्यायालय यह घोषित कर चुका है कि राज्य वित्त निगम अधिनियम में निर्वाचन के सिद्धांत का स्पष्ट प्रावधान किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि निर्वाचन का सिद्धांत न्यायालयों द्वारा समता के आधार पर विकसित किया गया सिद्धांत है। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि कोई व्यक्ति एक ही समय में किसी विषय को स्वीकार और अस्वीकार नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति किसी एक उपचार का चयन कर लेता है और जानबूझकर दूसरे उपचार का परित्याग कर देता है, तो निर्वाचन का सिद्धांत उसे उस उपचार का अनुसरण करने से रोक देता है जिसका उसने स्वेच्छा से त्याग किया है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि कोई ऋणदाता अपने लिए उपलब्ध एक अथवा अधिक संचयी उपचारों का चयन करता है, तो निर्वाचन का सिद्धांत उसे प्रतिबंधित नहीं करता। ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 तथा एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन उपलब्ध उपचार एक-दूसरे से असंगत नहीं हैं। दोनों उपचार उन्हीं तथ्यों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं जिनके आधार पर अनुतोष का दावा किया जाता है। उन्होंने आगे कहा कि उपचारों के निर्वाचन के मामलों में कोई पक्ष उसी उपचार तक सीमित रहता है जिसे उसने पहले चुना है और दूसरे उपचार का आश्रय नहीं ले सकता, क्योंकि दोनों उपचार परस्पर असंगत होते हैं; न कि तब जब वे समान प्रकृति के, संगत तथा समवर्ती उपचार हों। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि कोई ऋणदाता निर्वाचन के नियम से बाधित नहीं होता यदि वह केवल अपने लिए उपलब्ध संगत तथा संचयी उपचारों में से एक या अधिक का चयन करता है। इस प्रकार, यदि किसी ऋणदाता का दावा दो पृथक लिखित दायित्वों द्वारा सुरक्षित है, जो एक ही समय पर देय होते हैं, तो उसे उनमें से किसी एक अथवा दोनों के आधार पर बकाया राशि

की वसूली के लिए कार्यवाही करने का अधिकार है। इस संदर्भ में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने *कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम*, खंड 28, कंडिका 13; *अमेरिकन ज्यूरिसप्रूडेंस, द्वितीय संस्करण*, खंड 25; तथा *स्नेल्स प्रिंसिपल्स ऑफ इक्विटी,* अट्ठाईसवाँ संस्करण, पृष्ठ 495 पर निर्भरता व्यक्त की। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उधारकर्ताओं द्वारा सुझाई गई व्याख्या एनपीए अधिनियम के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगी, जिसका अधिनियमन ऋणों की त्वरित वसूली के लिए किया गया है। यदि किसी बैंक/वित्तीय संस्थान को धारा 19 के परंतुक के अधीन अपना आवेदन वापस लेने के लिए बाध्य या अनिवार्य किया जाए और उसके पश्चात् ही एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने दिया जाए, तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जिसमें धारा 13(10) निष्प्रभावी हो जाएगी। इससे परिसीमा तथा बकाया राशि की त्वरित वसूली में विलंब जैसी अतिरिक्त जटिलताएँ उत्पन्न होंगी। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा *कल्याणी सेल्स कंपनी बनाम भारत संघ* मामले में निकाला गया निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण था, क्योंकि उसमें यह कहा गया था कि एक बार बैंक/वित्तीय संस्थान एनपीए अधिनियम के अधीन कार्यवाही करने का निर्णय ले ले, तो उस अधिनियम के अनुसार बैंक/वित्तीय संस्थान पर ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 के अधीन लंबित मूल आवेदन वापस लेने का दायित्व आ जाता है।

भारतीय बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार ने तर्क दिया कि यदि एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दिया गया नोटिस मात्र कारण बताओ नोटिस होता, तो धारा 13(3-क) की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। उन्होंने कहा कि क्योंकि धारा 13(2) का नोटिस अधिनियम के अधीन की गई एक कार्रवाई है, इसलिए धारा 13(3-क) आवश्यक हो जाती है, क्योंकि वह उधारकर्ता को उस नोटिस के विरुद्ध आपत्ति प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करती है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम केवल प्रतिभूत परिसंपत्तियों से संबंधित है, जबकि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम प्रतिभूत तथा अप्रतिभूत, दोनों प्रकार की परिसंपत्तियों से संबंधित है। उन्होंने कहा

कि प्रतिभूत परिसंपत्ति ऐसी परिसंपत्ति है जिसका स्वामित्व बैंक/वित्तीय संस्थान के हित में सुरक्षित होता है और इसी कारण वह न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना कार्यवाही कर सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि कुछ मामलों में ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम आवश्यक उपचार उपलब्ध नहीं कराता था, जिसके परिणामस्वरूप एनपीए अधिनियम का अधिनियमन करना पड़ा। इस संदर्भ में उन्होंने उधारकर्ता के व्यवसाय के प्रबंधन को अपने नियंत्रण में लेने का उदाहरण दिया, जिसका प्रावधान केवल एनपीए अधिनियम में है, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में नहीं।

भारतीय बैंक संघ (आईबीए) की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी. दवे ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम का संचालन ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम से *स्वतंत्र रूप* से किया जाना चाहिए; यद्यपि दोनों अधिनियम एक ही वैधानिक योजना के अंतर्गत कार्य करते हैं, तथापि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम एक सामान्य अधिनियम है, जबकि एनपीए अधिनियम एक विशेष अधिनियम है। उन्होंने तर्क दिया कि बैंक/वित्तीय संस्थान धारा 13(10) के अधीन पुनः ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष जा सकता है, जो यह इंगित करता है कि एनपीए अधिनियम, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की अपेक्षा एक विशेष अधिनियम है और ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम एक सामान्य अधिनियम है। उन्होंने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम का विस्तारित रूप है। इस संदर्भ में उन्होंने इंगित किया कि परिसंपत्ति पुनर्निर्माण तथा परिसंपत्ति प्रबंधन की अवधारणा, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन ऋण वसूली की अवधारणा से अधिक व्यापक है। इस न्यायालय का ध्यान एनपीए अधिनियम की धारा 5 की ओर आकर्षित किया गया, जो वित्तीय परिसंपत्तियों में अधिकार अथवा हित के अर्जन से संबंधित है, जबकि ऐसी अवधारणा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में नहीं है। अतः विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और इसलिए, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन वाद लंबित होने के बावजूद, वित्तीय परिसंपत्तियों में

हित का अर्जन एनपीए अधिनियम के अधीन किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे इंगित किया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन ऋण प्रतिभूत भी हो सकता है और अप्रतिभूत भी; जबकि एनपीए अधिनियम की धारा 9(ट) के अधीन परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी अथवा प्रतिभूतिकरण कंपनी को परिसंपत्ति पुनर्निर्माण के प्रयोजनों के लिए, किसी अन्य प्रचलित विधि के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा लेने का अधिकार प्रदान किया गया है। अतः परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी भी ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के उपबंधों से प्रतिबंधित हुए बिना एनपीए अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रतिभूति हित का प्रवर्तन कर सकती है। धारा 9(ट) का उल्लेख यह प्रदर्शित करने के लिए किया गया कि प्रत्येक स्तर पर संसद ने न्यायालयों तथा ऋण वसूली अधिकरण के क्षेत्राधिकार को इस उद्देश्य से अपवर्जित किया है कि एनपीएयों का यथाशीघ्र परिसमापन किया जा सके। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 उस प्रक्रिया से संबंधित है जिसका पालन अधिकरण द्वारा किया जाना है; यह एक प्रक्रियात्मक धारा है और इसलिए धारा 19, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन अधिकरण को ऐसा कोई क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं कर सकती जिससे वह अधिकार अपने पास बनाए रख सके। उन्होंने कहा कि धारा 13(3-क) द्वारा संसद ने यह स्पष्ट और विचारपूर्वक निर्णय लिया है कि किसी भी स्तर पर ऋण वसूली अधिकरण अथवा न्यायालय का हस्तक्षेप नहीं होगा। इसी कारण उक्त धारा यह उपबंध करती है कि बैंक/वित्तीय संस्थान द्वारा कारणों के संप्रेषण के विरुद्ध उधारकर्ता ऋण वसूली अधिकरण का दरवाज़ा नहीं खटखटा सकता। इससे यह स्पष्ट होता है कि एनपीएयों के मामलों में संसद ने न्यायालयों और अधिकरणों के हस्तक्षेप को निषिद्ध कर दिया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि उधारकर्ताओं को सुनवाई का अवसर प्रदान करने की व्याख्या स्वीकार कर ली जाए, तो ऋण वसूली अधिकरण द्वारा अनुमति प्रदान किए जाने तक एनपीए अधिनियम का संचालन स्थगित हो जाएगा। उनके अनुसार ऐसी व्याख्या एनपीए अधिनियम के

अधिनियमन के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगी। अंत में उन्होंने इंगित किया कि एनपीए अधिनियम की धारा 35 यह घोषित करती है कि यह अधिनियम उन सभी अन्य विधियों पर प्रभावी होगा जो इसके साथ असंगत हैं। इसी प्रकार धारा 37 यह उपबंध करती है कि यदि कोई अन्य विधि एनपीए अधिनियम के अनुरूप है, तो एनपीए अधिनियम को एक अतिरिक्त अधिनियम के रूप में माना जाएगा। एनपीए अधिनियम को कंपनी अधिनियम, 1956; भारतीय प्रतिभूति और विनिमय समिति अधिनियम, 1992; ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम, 1993; तथा प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 के अतिरिक्त बनाया गया है। अतः उनके अनुसार वर्तमान मामले में निर्वाचन का सिद्धांत लागू नहीं होता। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम का अधिनियमन करने का मूल उद्देश्य बैंकिंग सुधारों को लागू करना था, जिसमें ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में भी ऐसे संशोधन सम्मिलित थे जिससे एनपीए अधिनियम के उपबंधों को उसमें समाहित किया जा सके। अतः मूल आवेदन की वापसी एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने के लिए कोई पूर्व-शर्त नहीं है।

आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजीव शकधर ने तर्क दिया कि प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम ("2002 के नियम") 2(ख) में यह उपबंध है कि मांग सूचना से अभिप्राय वह लिखित सूचना है जो कोई प्रतिभूत ऋणदाता एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) के अनुसरण में उधारकर्ता को जारी करता है। उक्त नियम पर यह प्रदर्शित करने के लिए निर्भरता व्यक्त की गई कि धारा 13(2) के अधीन दिया गया नोटिस मात्र कारण बताओ नोटिस नहीं है, बल्कि आयकर अधिनियम की धारा 156 के अधीन जारी मांग सूचना के समान एक मांग सूचना है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) उधारकर्ता द्वारा ऋण अदायगी में चूक तथा उसके खाते के एनपीए के रूप में वर्गीकृत किए जाने से संबंधित है; और एक बार खाता एनपीए के रूप में वर्गीकृत हो जाने पर आंशिक भुगतान किए जाने की स्थिति में भी वह खाता एनपीए ही बना रहता है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि नियम

3 के अधीन धारा 13(2) की मांग सूचना की सेवा की प्रक्रिया निर्धारित की गई है तथा यदि मांग सूचना में उल्लिखित राशि निर्धारित अवधि के भीतर अदा नहीं की जाती, तो नियम 4 के अनुसार बैंक/वित्तीय संस्थान का प्राधिकृत अधिकारी धारा 13(4) में निर्दिष्ट एक अथवा अधिक उपायों को अपनाकर राशि की वसूली करेगा। इन नियमों का उल्लेख यह प्रदर्शित करने के लिए किया गया कि धारा 13(2) के अधीन जारी नोटिस स्वयं एनपीए अधिनियम के अधीन की गई एक कार्रवाई है। उन्होंने आगे इंगित किया कि मांग सूचना जारी होने के पश्चात् उधारकर्ता को धारा 13(13) के अधीन परिसंपत्तियों के संबंध में व्यवहार करने से प्रतिबंधित कर दिया जाता है। उन्होंने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की धारा 13 प्रतिभूति हित से संबंधित है, जबकि धारा 9 अप्रतिभूत हित से संबंधित है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ऋण की वसूली के लिए दायर वाद और प्रतिभूतियों के प्रवर्तन हेतु दायर वादों के बीच मूलभूत अंतर है; एनपीए अधिनियम प्रतिभूतियों के प्रवर्तन से संबंधित है और वह ऋण के पूर्णतः निर्धारित होने की प्रतीक्षा नहीं करता। इसलिए, यदि 11.11.2004 से पूर्व ही धारा 13(2) के अधीन नोटिस जारी कर कार्रवाई प्रारंभ कर दी गई हो, तो ऋण वसूली अधिकरण में दायर मूल आवेदन को वापस लेना आवश्यक नहीं होगा। उन्होंने आगे कहा कि निर्वाचन का सिद्धांत न तो एनपीए अधिनियम की कार्यवाहियों पर लागू होता है और न ही ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की कार्यवाहियों पर। उनके अनुसार दोनों अधिनियमों के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति, परिधि तथा क्षेत्र अलग-अलग हैं। उन्होंने तर्क दिया कि न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना प्रतिभूत ऋणदाताओं को धारा 13(4) के अधीन अपने प्रतिभूति हित का प्रवर्तन करने की शक्ति प्रदान करने का विधायी उद्देश्य, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 69 में निहित बाधाओं से उन्हें मुक्त करना था। अब एनपीए अधिनियम की धारा 13 के कारण प्रतिभूत ऋणदाता न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना तथा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 69 की सीमाओं के बावजूद, प्रतिभूत परिसंपत्तियों की बिक्री सहित कोई भी उपाय अपना सकता है। डिक्री पारित होने से पूर्व भी संपत्ति की बिक्री की शक्ति को यह

न्यायालय पूर्व में दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 40 नियम 1(1)(घ) पर निर्भर करते हुए वैध ठहरा चुका है। इन परिस्थितियों में, मूल आवेदन की वापसी को एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने के लिए पूर्व-शर्त नहीं बनाया जा सकता।

पंजाब नेशनल बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ध्रुव मेहता ने तर्क दिया कि निर्वाचन का सिद्धांत बैंकों/वित्तीय संस्थानों के लिए है, उधारकर्ताओं के लिए नहीं। इसका कारण यह है कि किसी ऋणदाता को अपने देनदार की ओर देखना होता है; परिसंपत्ति का परिसमापन करना बैंक का अधिकार है और एक बार बैंक/वित्तीय संस्थान के पक्ष में प्रतिभूति अथवा हित का सृजन हो जाने पर यह अधिकार निर्बाध हो जाता है। [देखें, *अब्दुल अज़ीज़ बनाम पंजाब नेशनल बैंक*, (2005) 127 कंपनी मामले 514 (केरल)]। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 19(1) के परंतुक को अधिनियमित करने का उद्देश्य आदेश 23, दीवानी प्रक्रिया संहिता के सिद्धांतों को सम्मिलित करना था। उन्होंने तर्क दिया कि निर्वाचन का सिद्धांत केवल परस्पर असंगत उपचारों के मामलों में लागू होता है, अतिरिक्त उपचारों के मामलों में नहीं। उन्होंने तर्क दिया कि किसी आवेदन की वापसी वैकल्पिक उपचार के लिए पूर्व-शर्त हो सकती है, किन्तु अतिरिक्त उपचार का आश्रय लेने के लिए उसे पूर्व-शर्त नहीं बनाया जा सकता। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि औद्योगिक कंपनियाँ अधिनियम के विपरीत, एनपीए अधिनियम, 2002 में परिसीमा की रक्षा करने वाला कोई परंतुक नहीं है। अतः यदि उधारकर्ताओं का तर्क स्वीकार कर लिया जाए, तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें एनपीए अधिनियम के अधीन बैंक की कार्यवाही परिसीमा द्वारा बाधित हो जाए। किसी भी स्थिति में, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, एनपीए अधिनियम एक पश्चातवर्ती अधिनियम है और इसलिए उसका प्रभाव ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम पर प्रधान होगा।

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया की ओर से उपस्थित विदुषी अधिवक्ता सुश्री जे.एस. वाड ने विभिन्न बैंकों की ओर से प्रस्तुत उपर्युक्त तर्कों को अंगीकृत किया।

विवाद का मूल तत्व यह है कि एनपीए अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि बैंक अथवा वित्तीय संस्थान के पास गिरवी रखी गई अथवा बंधक की गई परिसंपत्ति में बैंक/वित्तीय संस्थान के पक्ष में एक हित का सृजन किया गया है; कि उधारकर्ता अब देनदार बन चुका है; उसकी देयता निश्चित एवं परिपक्व हो चुकी है; तथा बैंक/वित्तीय संस्थान के साथ उसका खाता (जो बैंक/वित्तीय संस्थान की एक परिसंपत्ति है) अवमानक श्रेणी में आ गया है।

मुद्रास्फीतिक अर्थव्यवस्था में किसी परिसंपत्ति का मूल्य "समय" के प्रभाव से कम होता जाता है। बैंक/वित्तीय संस्थान के पक्ष में सृजित अधिकार के साथ उधारकर्ता का यह समवर्ती दायित्व भी जुड़ा होता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि ऋण का समय पर भुगतान न करने के कारण समय के साथ प्रतिभूति का मूल्य ह्रास न हो।

इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, एनपीए अधिनियम का अधिनियमन प्रतिभूति के त्वरित प्रवर्तन के लिए किया गया है। यह अधिनियम बैंक/वित्तीय संस्थान में निहित अधिकारों के प्रवर्तन से संबंधित है। एनपीए अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि प्रतिभूति हित बैंक/वित्तीय संस्थान में निहित है। एनपीए अधिनियम की धाराएँ 5 और 9 भी बैंकों/वित्तीय संस्थानों की परिसंपत्तियों के मूल्य के संरक्षण के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। ऋण की त्वरित वसूली एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। यह उद्देश्य ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम तथा एनपीए अधिनियम दोनों का है। किन्तु एनपीए अधिनियम के अधीन बैंकों/वित्तीय संस्थानों को वह अधिकार प्रदान किया गया है जो ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में उपलब्ध नहीं है, अर्थात् प्रतिभूत हित को प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को समनुदेशित करने का अधिकार। जहाँ उधारकर्ता ने बैंक/वित्तीय संस्थान से प्राप्त वित्तीय सहायता से कोई परिसंपत्ति खरीदी है, वहाँ बैंक/वित्तीय संस्थान को ऋणदाता माना जाता है और समनुदेशन के पश्चात् प्रतिभूतिकरण कंपनी अथवा

परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी उस ऋणदाता बैंक/वित्तीय संस्थान के स्थान पर आ जाती है तथा उधारकर्ता से ऋण की वसूली कर सकती है।

स्नेल्स इक्विटी (इकतीसवाँ संस्करण), पृष्ठ 777 के अनुसार, एक ही संव्यवहार से द्वैध दायित्व उत्पन्न हो सकते हैं, अर्थात् 'क' का 'ख' को धनराशि लौटाने का दायित्व अथवा कोई अन्य दायित्व। ऐसी स्थिति में 'ख', 'क' के विरुद्ध धनराशि की वसूली अथवा उस अन्य दायित्व के उल्लंघन के लिए वाद दायर कर सकता है। तथापि, प्रायः 'ख' के पास ऐसी कोई प्रतिभूति होती है जो 'क' के दायित्व को सुरक्षित करती है, जैसे कोई परिसंपत्ति जिस पर 'ख' अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। 'ख' को यह प्रतिभूति या तो विधि के द्वारा, अथवा सामान्य विधि के सिद्धांतों के संचालन से, अथवा संव्यवहार (संविदा) के अधीन प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त, 'ख' किसी तृतीय पक्ष के विरुद्ध व्यक्तिगत वादाधिकार भी प्राप्त कर सकता है। परिसंपत्ति (संपत्ति) पर प्रतिभूति बंधक, प्रभार, गिरवी, धारणाधिकार आदि के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। किसी तृतीय पक्ष के विरुद्ध वादाधिकार के रूप में प्राप्त प्रतिभूति को प्रत्याभूति कहा जाता है। व्यापक रूप से परिसंपत्ति पर प्रतिभूति के तीन प्रकार होते हैं। पहला वह स्थिति जिसमें ऋणदाता संबंधित परिसंपत्ति में हित प्राप्त करता है (बंधक)। दूसरी वह स्थिति जिसमें ऋणदाता का अधिकार परिसंपत्ति के कब्जे पर निर्भर करता है (गिरवी/धारणाधिकार)। तीसरी, प्रभार, जिसमें ऋणदाता न तो परिसंपत्ति का स्वामित्व प्राप्त करता है और न ही उसका कब्जा, किन्तु उक्त परिसंपत्ति को संबंधित ऋण अथवा दायित्व की संतुष्टि के लिए विनियोजित कर दिया जाता है। यहाँ जो द्विभाजन महत्त्वपूर्ण है, वह यह है कि एक ही संव्यवहार से एक से अधिक दायित्व उत्पन्न हो सकते हैं, अर्थात् ऋण का पुनर्भुगतान करने का दायित्व अथवा किसी अन्य दायित्व का निर्वहन करने का दायित्व।

अतः, जब एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा लेने अथवा उधारकर्ता के व्यवसाय के प्रबंधन को अपने नियंत्रण में लेने की बात करती है, तो

इसका कारण यह है कि जब कोई व्यक्ति गिरवी, हाइपोथिकेशन, बंधक अथवा प्रभार द्वारा सुरक्षित ऋण प्राप्त करता है, तब वह बैंक/वित्तीय संस्थान के पक्ष में एक अधिकार का सृजन करता है। उदाहरणार्थ, जब कोई कंपनी ऋण प्राप्त करती है और अपनी वित्तीय परिसंपत्ति को प्रतिभूति के रूप में हाइपोथिकेट करती है, तब उस कंपनी का यह दायित्व होता है कि वह उधार ली गई राशि और हाइपोथिकेट की गई वित्तीय परिसंपत्ति के मूल्य द्वारा आच्छादित ऋण की सीमा के मध्य आवश्यक अंतर को बनाए रखे। यदि उधारकर्ता कंपनी ऋण का पुनर्भुगतान नहीं करती, चूककर्ता बन जाती है और वित्तीय परिसंपत्ति के मूल्य को बनाए रखने में भी विफल रहती है, जिसके परिणामस्वरूप उस परिसंपत्ति का मूल्य घट जाता है, तो उधारकर्ता अपने दायित्व का उल्लंघन करता है। इससे बैंक/वित्तीय संस्थान की पुस्तकों में परिसंपत्ति और देयता के बीच असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण एनपीए अधिनियम की धाराएँ 5 और 9 प्रतिभूत हित के अर्जन की बात करती हैं, जिससे बैंक/वित्तीय संस्थान की वित्तीय स्थिति विवरण स्वच्छ बनी रहे। यही सिद्धांत बैंक/वित्तीय संस्थान के पक्ष में प्रभारित अथवा बंधक की गई अचल संपत्ति पर भी लागू होता है। ये कुछ ऐसे कारक हैं जिन्हें बैंक/वित्तीय संस्थान का प्राधिकृत अधिकारी एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस जारी करते समय ध्यान में रखता है। अतः, साम्यिक अधिकार उधारकर्ता में नहीं, बल्कि बैंक/वित्तीय संस्थान में निहित होता है। इसलिए पुनर्भुगतान के दायित्व के अतिरिक्त, उधारकर्ता यह भी वचन देता है कि वह हाइपोथिकेट की गई प्रतिभूतियों का मार्जिन तथा मूल्य बनाए रखेगा, जिससे बैंक/वित्तीय संस्थान की पुस्तकों में परिसंपत्ति और देयता के मध्य कोई असंतुलन उत्पन्न न हो। यह दायित्व पुनर्भुगतान के दायित्व से पृथक और स्वतंत्र है। उधारकर्ता का यही पूर्ववर्ती दायित्व एनपीए अधिनियम के प्रावधानों को आकर्षित करता है, जिसे यह अधिनियम धारा 13(4) में वर्णित उपायों द्वारा प्रवर्तित करना चाहता है। ये उपाय ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में परिकल्पित नहीं हैं। अतः यह कहना त्रुटिपूर्ण है कि दोनों अधिनियम समानांतर उपचार प्रदान करते हैं, जैसा कि *मेसर्स*

कल्याणी सेल्स कंपनी के मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय में कहा गया है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध उपचार, एनपीए अधिनियम की तुलना में सीमित है। एनपीए अधिनियम प्राप्य राशियों के परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को अर्जन तथा समनुदेशन का प्रावधान करता है और बैंकों/वित्तीय संस्थानों को कब्जा लेने अथवा प्रबंधन अपने नियंत्रण में लेने की शक्ति प्रदान करता है, जो ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम में उपलब्ध नहीं है। इसी कारण एनपीए अधिनियम को धारा 37 के अधीन एक अतिरिक्त उपचार माना गया है, जो ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के साथ असंगत नहीं है।

उपरोक्त विवेचन के आलोक में अब हम निर्वाचन के सिद्धांत का परीक्षण करते हैं। निर्वाचन के सिद्धांत के तीन आवश्यक तत्व हैं अर्थात दो या अधिक उपचारों का अस्तित्व, उन उपचारों के मध्य असंगति, तथा उनमें से किसी एक का चयन। यदि इन तीनों में से कोई एक तत्व भी अनुपस्थित हो, तो निर्वाचन का सिद्धांत लागू नहीं होगा। *अमेरिकन ज्यूरिसप्रूडेंस,* द्वितीय संस्करण, खंड 25, पृष्ठ 652 के अनुसार, यदि वस्तुतः केवल एक ही उपचार उपलब्ध है, तो निर्वाचन का सिद्धांत लागू नहीं होता। वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एनपीए अधिनियम ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अतिरिक्त एक उपचार प्रदान करता है। दोनों मिलकर एक समेकित उपचार का निर्माण करते हैं। इसलिए निर्वाचन का सिद्धांत लागू नहीं होता। स्नेल्स इक्विटी (इकतीसवाँ संस्करण, पृष्ठ 119) के अनुसार भी उपचारों के निर्वाचन का सिद्धांत केवल तभी लागू होता है जब निर्वाचन के समय वादकारी के लिए दो या अधिक सह-अस्तित्व वाले उपचार उपलब्ध हों, जो परस्पर विरोधी तथा असंगत हों। किसी भी स्थिति में, इन दोनों उपचारों के मध्य न तो कोई विरोध है और न ही कोई असंगति। अतः निर्वाचन के सिद्धांत का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है।

हमारे विचार में, वे उच्च न्यायालयीय निर्णय जिनमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया है कि निर्वाचन का सिद्धांत लागू होता है, त्रुटिपूर्ण हैं और उन्हें निरस्त किया जाना चाहिए।

हम दोनों अधिनियमों की योजना का पूर्व में विश्लेषण कर चुके हैं। मूलतः, एनपीए अधिनियम का अधिनियमन उन वित्तीय परिसंपत्तियों में बैंक/वित्तीय संस्थान के हित के प्रवर्तन हेतु किया गया है, जो पक्षकारों के मध्य संविदा, सामान्य विधि के सिद्धांतों अथवा विधि के संचालन के कारण बैंक/वित्तीय संस्थान को प्राप्त होती हैं। एनपीए अधिनियम की धारा 13 का मूल उद्देश्य गैर-न्यायनिर्णयनात्मक प्रक्रिया द्वारा वसूली करना है। एनपीए अधिनियम के अंतर्गत प्रतिभूत परिसंपत्ति वह परिसंपत्ति है जिसमें उधारकर्ता द्वारा बैंक/वित्तीय संस्थान के पक्ष में हित का सृजन किया गया है और उसी आधार पर यह अधिनियम गैर-न्यायनिर्णयनात्मक प्रक्रिया द्वारा उस प्रतिभूति हित का प्रवर्तन करता है। वास्तव में, एनपीए अधिनियम प्रतिभूत ऋणदाता के अधिकारों से संबंधित है। यह अधिनियम इस आधार पर कार्य करता है कि देनदार न केवल ऋण का पुनर्भुगतान करने में विफल रहा है, बल्कि वह आवश्यक मार्जिन तथा प्रतिभूति के मूल्य को बनाए रखने में भी विफल रहा है। यही अतिरिक्त दायित्व एनपीए अधिनियम की प्रयोज्यता को आकर्षित करता है। इसी कारण एनपीए अधिनियम की धाराएँ 13(1) तथा 13(2) इस आधार पर कार्य करती हैं कि बैंक/वित्तीय संस्थान के प्रतिभूति हित का न्यायालय अथवा अधिकरण के हस्तक्षेप के बिना शीघ्र प्रवर्तन किया जाना आवश्यक है; कि उधारकर्ता की देयता परिपक्व हो चुकी है; तथा पुनर्भुगतान में चूक के कारण उसके खाते को बैंक की पुस्तकों में एनपीए के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया है। उपर्युक्त कारणों से एनपीए अधिनियम यह घोषित करता है कि प्रतिभूति हित का प्रवर्तन गैर-न्यायनिर्णयनात्मक प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है तथा यह अधिनियम उक्त परिस्थितियों में प्रतिभूत ऋणदाता के अधिकारों पर विद्यमान सभी बंधनों को समाप्त कर देता है।

फिर भी प्रश्न यह बना रहता है कि संशोधन अधिनियम संख्या 30/2004 द्वारा ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) में जो तीन परंतुक जोड़े गए, उनका उद्देश्य क्या था। ऋण वसूली अधिकरण एक अधिकरण है; वह विधि की सृष्टि है; उसके पास वे

अंतर्निहित शक्तियाँ नहीं हैं जो दीवानी न्यायालयों के पास होती हैं। दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 1(3) में *अन्य बातों के साथ* यह उपबंध है कि जहाँ न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि वाद की विषय-वस्तु अथवा दावे के किसी भाग के संबंध में वादी को नया वाद संस्थित करने की अनुमति देने हेतु पर्याप्त आधार विद्यमान हैं, वहाँ वह उपयुक्त शर्तों पर वादी को संपूर्ण वाद अथवा दावे के किसी भाग को वापस लेने तथा उसके संबंध में नया वाद संस्थित करने की स्वतंत्रता प्रदान कर सकता है। आदेश 23 नियम 1(4)(ख) के अनुसार, जहाँ कोई वाद न्यायालय की अनुमति के बिना वापस लिया जाता है, वहाँ वादी उसी विषय-वस्तु के संबंध में नया वाद संस्थित करने से वंचित हो जाएगा। आदेश 23 नियम 2 यह उपबंध करता है कि अनुमति प्राप्त कर संस्थित किया गया नया वाद परिसीमा की गणना से पूर्ववर्ती वाद की अवधि को बाहर नहीं करेगा और वादी परिसीमा विधि से उसी प्रकार आबद्ध रहेगा मानो पूर्ववर्ती वाद कभी संस्थित ही नहीं किया गया था। आदेश 23 नियम 3 समझौते के आधार पर वादों के निस्तारण से संबंधित है। उसमें यह उपबंध है कि जहाँ न्यायालय के समक्ष यह सिद्ध हो जाए कि वाद का पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से किसी वैध करार अथवा समझौते द्वारा समायोजन कर लिया गया है, अथवा प्रतिवादी ने वाद की विषय-वस्तु के संपूर्ण अथवा किसी भाग के संबंध में वादी को संतुष्ट कर दिया है, वहाँ न्यायालय ऐसे करार, समझौते अथवा संतुष्टि को अभिलिखित करने का आदेश देगा तथा उसके अनुरूप डिक्री पारित करेगा।

ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19(1) में प्रथम परंतुक तथा तृतीय परंतुक को सम्मिलित करने का उद्देश्य ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम, एनपीए अधिनियम तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करना था। तर्क के लिए यह मान लिया जाए कि किसी सावधि ऋण, साख सुविधा तथा हाइपोथिकेशन खाते के संबंध में धनराशि की वसूली हेतु ऋण वसूली अधिकरण में मूल आवेदन प्रस्तुत किया गया है। मूल आवेदन प्रस्तुत किए जाने के पश्चात्, अधिकरण में अत्यधिक लंबित मामलों के

कारण उसके निस्तारण में विलंब हो जाता है और इस बीच बैंक को यह ज्ञात होता है कि तीन खातों में से एक खाता अवमानक अथवा हानि खाते में परिवर्तित हो गया है। ऐसी स्थिति में बैंक ऋण वसूली अधिकरण की अनुमति के साथ अथवा उसके बिना भी एनपीए अधिनियम का आश्रय ले सकता है। यह तथ्य दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता कि आवेदन की वापसी अथवा अनुमति प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत आवेदन के निस्तारण में भी समय लगता है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, मुद्रास्फीति वाली अर्थव्यवस्था में गिरवी रखी गई संपत्ति अथवा परिसंपत्ति का मूल्य प्रतिदिन घटता जाता है। यदि उधारकर्ता अतिरिक्त परिसंपत्ति उपलब्ध नहीं कराता और गिरवी रखी गई परिसंपत्ति का मूल्य लगातार कम होता रहता है, तो उसी सीमा तक वह खाता अनुत्पादक हो जाता है। अतः बैंक/वित्तीय संस्थान के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) में वर्णित उपायों में से किसी एक को अपनाकर शीघ्रता से कार्यवाही करे। इसके अतिरिक्त, दीवानी प्रक्रिया संहिता का आदेश 23 सामान्य विधि के उस सिद्धांत का अपवाद है जिसके अनुसार वादी को केवल वाद वापसी के आधार पर पुनः वाद संस्थित करने का अधिकार नहीं होता। इसी कारण धारा 19(1) में परंतुक का समावेश आवश्यक हो गया था।

उपरोक्त कारणों से हम यह धारित करते हैं कि ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लंबित मूल आवेदन की वापसी, एनपीए अधिनियम का आश्रय लेने के लिए पूर्व-शर्त नहीं है। यह बैंक/वित्तीय संस्थान के विवेक पर निर्भर है कि किन मामलों में वह अनुमति प्राप्त करने हेतु आवेदन प्रस्तुत करे तथा किन मामलों में वह आवेदन वापसी हेतु अनुमति प्राप्त करना आवश्यक न समझे। हम उन परिस्थितियों का विस्तारपूर्वक उल्लेख करना उचित नहीं समझते, क्योंकि धारा 19(1) का उक्त प्रथम परंतुक एक सक्षमकारी उपबंध है, जो विविध प्रकार की परिस्थितियों से संबंधित हो सकता है।

(ii) बिंदु संख्या 2 — कब्जे के प्रश्न पर

इस शीर्षक के अंतर्गत संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन उधारकर्ता की प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा लेने का अधिकार, अचल संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा लेने की शक्ति को भी समाहित करता है।

उधारकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एन.सी. साहनी तथा श्री पंकज गुप्ता ने तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) प्रतिभूत ऋणदाता को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह धारा 13(2) के अधीन प्रदत्त साठ दिवस की नोटिस अवधि समाप्त होने के पश्चात् उधारकर्ता की प्रतिभूत अचल परिसंपत्तियों का कब्जा ले सके। उन्होंने इंगित किया कि अनेक मामलों में बैंकों/वित्तीय संस्थानों ने वास्तविक भौतिक कब्जा ले लिया है, जबकि अन्य मामलों में केवल सांकेतिक कब्जा लिया गया है। विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि *कल्याणी सेल्स कंपनी* के मामले में उच्च न्यायालय ने उचित रूप से यह धारित किया था कि यदि साठ दिवस की अवधि समाप्त होने पर भौतिक कब्जा ले लिया जाए, तो उधारकर्ता को एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन उपलब्ध आवेदन का उपचार निरर्थक एवं अर्थहीन हो जाएगा, क्योंकि अधिकरण द्वारा उसकी आपत्तियों का निर्णय किए जाने से पूर्व ही उसे अथवा कब्जाधारी व्यक्ति को बेदखल कर दिया जाएगा। उन्होंने आगे तर्क दिया कि धारा 13(8) के अनुसार, यदि विक्रय हेतु नियत तिथि से पूर्व किसी भी समय प्रतिभूत ऋणदाता की समस्त बकाया राशि तथा सभी लागत, प्रभार और व्यय का भुगतान कर दिया जाए, तो बैंक/वित्तीय संस्थान प्रतिभूत परिसंपत्तियों का विक्रय नहीं कर सकता।

विद्वान अधिवक्ताओं ने यह भी इंगित किया कि 2002 के नियमों के नियम 8(1) के अंतर्गत प्रतिभूत ऋणदाता को परिशिष्ट-IV में निर्दिष्ट प्रारूप के अनुसार कब्जा लेने की शक्ति प्रदान की गई है। उक्त नोटिस उधारकर्ता को संपत्ति के संबंध में किसी प्रकार का व्यवहार न करने की चेतावनी देता है। उनका तर्क था कि नियम 8(1) के अधीन दिया गया नोटिस कुर्की के समान प्रभाव रखता है और वह केवल सांकेतिक कब्जे की परिकल्पना करता है। उन्होंने आगे

कहा कि अचल परिसंपत्तियों का वास्तविक भौतिक कब्जा केवल नियम 8(3) के अधीन उन मामलों में लिया जा सकता है जहाँ भूखंड रिक्त हो अथवा संपत्ति उपेक्षित अवस्था में पड़ी हो; किन्तु जहाँ कोई व्यक्ति अचल संपत्ति पर वास्तविक भौतिक कब्जे में हो, वहाँ उसे केवल नियम 8(1) के अधीन नोटिस जारी करके बेदखल नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार, वास्तविक भौतिक कब्जा केवल नियम 9(6) सहपठित परिशिष्ट-V के अधीन विक्रय की पुष्टि के पश्चात् ही क्रेता को सौंपा जा सकता है, जिसके अंतर्गत प्राधिकृत अधिकारी नियम 9(9) के अनुसार संपत्ति को सभी भारों से मुक्त कर क्रेता को हस्तांतरित करने के लिए अधिकृत होता है। अतः विद्वान अधिवक्ताओं ने यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही था कि उधारकर्ता अथवा अचल संपत्ति पर कब्जाधारी किसी अन्य व्यक्ति को एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन नोटिस जारी करते समय भौतिक रूप से बेदखल नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष उसके दावे के न्यायनिर्णयन का अधिकार निष्फल हो जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि वास्तविक भौतिक कब्जा केवल 2002 के नियमों के नियम 9(9) के अनुसार विक्रय की पुष्टि के पश्चात् ही लिया जा सकता है।

हम उपर्युक्त तर्कों में कोई सार नहीं पाते और इसके निम्नलिखित कारण हैं—

कब्जा शब्द एक सापेक्ष अवधारणा है। यह कोई निरपेक्ष अवधारणा नहीं है। अधिनियम में सांकेतिक कब्जे और वास्तविक भौतिक कब्जे के बीच किसी प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, उन प्रतिभूतियों के मध्य एक वैचारिक भेद है जिनके माध्यम से ऋणदाता को संबंधित संपत्ति में स्वामित्व अथवा हित प्राप्त होता है (जैसे बंधक), और उन प्रतिभूतियों के मध्य जहाँ ऋणदाता को न तो संपत्ति में कोई हित प्राप्त होता है और न ही उसका कब्जा, बल्कि संपत्ति को ऋण की संतुष्टि हेतु विनियोजित कर दिया जाता है (जैसे प्रभार)। मूलतः, एनपीए अधिनियम प्रथम प्रकार की प्रतिभूतियों से संबंधित है, जिनके अंतर्गत प्रतिभूत ऋणदाता अर्थात् बैंक/वित्तीय संस्थान को

संबंधित संपत्ति में हित प्राप्त होता है। इसी कारण एनपीए अधिनियम न्यायालयों एवं अधिकरणों के हस्तक्षेप को अपवर्जित करता है।

उपर्युक्त वैचारिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए हम पाते हैं कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) इस आधार पर कार्य करती है कि उधारकर्ता, जो एक दायित्व के अधीन है, धारा 13(2) में निर्धारित अवधि के भीतर अपने दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिभूत ऋणदाता को धारा 13(4) में वर्णित उपायों में से किसी एक का आश्रय लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, अर्थात् प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा लेना, जिसमें उन परिसंपत्तियों की वसूली हेतु पट्टे, समनुदेशन अथवा विक्रय के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार भी सम्मिलित है। धारा 13(4-क) में केवल "कब्जा" शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसा कि उधारकर्ताओं की ओर से तर्क दिया गया है, उपधारा (4-क) में किसी प्रकार का द्वैत अथवा विभाजन नहीं है। वर्ष 2002 के नियमों के नियम 8 के अंतर्गत प्राधिकृत अधिकारी को परिशिष्ट-IV में यथासंभव निर्दिष्ट प्रारूप के अनुसार कब्जा सूचना प्रदान करके कब्जा लेने का अधिकार दिया गया है। उक्त सूचना को संपत्ति पर चस्पा किया जाना आवश्यक है। नियम 8 प्रतिभूत अचल परिसंपत्तियों के विक्रय से संबंधित है। परिशिष्ट-IV कब्जा सूचना का प्रारूप निर्धारित करता है। उसमें अन्य बातों के साथ यह उल्लेख है कि उधारकर्ता, जो देय राशि का भुगतान करने में विफल रहा है, तथा आम जनता को यह सूचित किया जाता है कि बैंक/वित्तीय संस्थान ने एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) सहपठित वर्ष 2002 के नियमों के नियम 9 के अधीन उक्त संपत्ति का कब्जा ग्रहण कर लिया है। नियम 9 विक्रय के समय, विक्रय प्रमाण-पत्र के निर्गमन तथा कब्जा सुपुर्द करने से संबंधित है। नियम 9(6) के अनुसार, विक्रय की पुष्टि हो जाने पर तथा भुगतान की शर्तों का अनुपालन किए जाने पर, प्राधिकृत अधिकारी वर्ष 2002 के नियमों के परिशिष्ट-V में निर्दिष्ट प्रारूप में क्रेता के पक्ष में विक्रय प्रमाण-पत्र जारी करेगा। नियम 9(9) यह उपबंधित करता है कि प्राधिकृत अधिकारी संपत्ति को *प्रतिभूत ऋणदाता को ज्ञात अथवा अज्ञात* सभी

भारों से मुक्त करके क्रेता को सुपुर्द करेगा (जोर दिया गया)। एनपीए अधिनियम की धारा 14 यह उपबंधित करती है कि जहाँ किसी प्रतिभूत परिसंपत्ति का कब्जा प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा लिया जाना अपेक्षित हो अथवा किसी प्रतिभूत परिसंपत्ति का विक्रय या हस्तांतरण किया जाना हो, वहाँ प्रतिभूत ऋणदाता कब्जा प्राप्त करने के उद्देश्य से जिला दंडाधिकारी को लिखित अनुरोध कर सकता है। एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) अपील के अधिकार से संबंधित है। धारा 17(3) के अनुसार, यदि ऋण वसूली अधिकरण अपीलीय प्राधिकारी के रूप में मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों की परीक्षा करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि धारा 13(4) के अंतर्गत प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा अपनाए गए उपायों में से कोई उपाय अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है, तो वह आदेश द्वारा ऐसी कार्यवाही को अवैध घोषित कर सकता है तथा परिणामस्वरूप उधारकर्ता को पुनः कब्जा लौटाने और उसके व्यवसाय का प्रबंधन भी पुनर्स्थापित करने का निर्देश दे सकता है। अतः धारा 13(4) तथा धारा 17(3) की संयुक्त योजना से यह स्पष्ट है कि यदि उधारकर्ता को अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं बेदखल किया गया है, तो ऋण वसूली अधिकरण *पूर्ववर्ती स्थिति* को पुनर्स्थापित कर स्थिति को यथावत् कर सकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यदि विक्रय की पुष्टि से पूर्व कब्जा ले लिया जाता है, तो प्राधिकृत अधिकारी द्वारा कब्जा ग्रहण कर लेने मात्र से उधारकर्ता का विवाद के न्यायनिर्णयन का अधिकार समाप्त हो जाता है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, एनपीए अधिनियम कब्जे की पुनर्प्राप्ति हेतु गैर-न्यायनिर्णयात्मक प्रक्रिया का प्रावधान करता है। अतः यह कहना कि न्यायनिर्णयन के बिना उधारकर्ता के अधिकार समाप्त हो जाएंगे, त्रुटिपूर्ण होगा। निस्संदेह, नियम 8 प्रतिभूत अचल परिसंपत्तियों के विक्रय से संबंधित है। तथापि, नियम 8(4) यह इंगित करता है कि जहाँ नियम 9 के अधीन विक्रय प्रमाण-पत्र जारी होने से पूर्व प्राधिकृत अधिकारी द्वारा कब्जा ग्रहण कर लिया गया हो, वहाँ प्राधिकृत अधिकारी विक्रय अथवा अन्य प्रकार से निस्तारण होने तक प्रतिभूत परिसंपत्तियों के संरक्षण एवं सुरक्षा हेतु आवश्यक कदम उठाएगा। धारा 13(8) के

अनुसार, यदि प्रतिभूत ऋणदाता की संपूर्ण बकाया राशि तथा उसके द्वारा वहन किए गए सभी व्यय, प्रभार एवं लागत विक्रय अथवा हस्तांतरण हेतु निर्धारित तिथि से पूर्व अदा कर दिए जाएँ, तो परिसंपत्ति का विक्रय अथवा हस्तांतरण नहीं किया जाएगा। धारा 13(8) में उल्लिखित लागत, प्रभार एवं व्यय में वे सभी व्यय भी सम्मिलित होंगे जो प्राधिकृत अधिकारी नियम 8(4) के अधीन प्रतिभूत परिसंपत्तियों के संरक्षण एवं सुरक्षा हेतु वहन करता है, जब तक कि उनका विक्रय अथवा अन्य प्रकार से निस्तारण न हो जाए। अतः नियम 8 उस अवस्था से संबंधित है जो नियम 9 के अधीन विक्रय प्रमाण-पत्र जारी होने तथा कब्जा सुपुर्द किए जाने से पूर्व की अवस्था है। विक्रय प्रमाण-पत्र जारी होने तक प्राधिकृत अधिकारी, दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 40 नियम 1 के अधीन नियुक्त न्यायालयीय अभिरक्षक के समान होता है। न्यायालयीय अभिरक्षक सांकेतिक कब्जा ग्रहण कर सकता है और उपयुक्त मामलों में, जहाँ उसे यह प्रतीत हो कि रात्रि में ही किसी तृतीय पक्ष का हित सृजित किया जा सकता है, वह डिक्री पारित होने से पूर्व भी वास्तविक भौतिक कब्जा ग्रहण कर सकता है। नियम 8 के अधीन प्राधिकृत अधिकारी की शक्तियाँ न्यायालयीय अभिरक्षक से भी अधिक व्यापक हैं, क्योंकि संपत्ति में प्रतिभूति हित पहले से ही बैंकों/वित्तीय संस्थानों के पक्ष में सृजित हो चुका होता है और उस हित का संरक्षण किया जाना आवश्यक है। इसी कारण नियम 8 यह उपबंधित करता है कि नियम 9 के अधीन विक्रय प्रमाण-पत्र जारी होने तक प्राधिकृत अधिकारी प्रतिभूत परिसंपत्ति के संरक्षण हेतु वे सभी कदम उठा सकता है जिन्हें वह उपयुक्त समझे। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि अनेक मामलों में तृतीय पक्ष के हित रातों-रात सृजित कर दिए जाते हैं और बाद में वे तृतीय पक्ष स्वयं को सूचना के अभाव में मूल्य देकर संपत्ति क्रय करने वाला *सद्भावनापूर्ण* क्रेता बताकर प्रतिरक्षा ग्रहण करते हैं। इन्हीं प्रकार के विवादों से बचने के लिए वर्ष 2002 के नियमों के नियम 8 तथा नियम 9 की व्यवस्था की गई है। इन परिस्थितियों में, एनपीए अधिनियम तथा वर्ष 2002 के नियमों की

योजना में सांकेतिक कब्जे और वास्तविक भौतिक कब्जे के मध्य किसी प्रकार का विभाजन स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(iii) बिंदु संख्या 3 — न्यायालय शुल्क के प्रश्न पर

प्रश्न यह है कि क्या एनपीए अधिनियम के अधीन कोई नियम निर्मित न होने की स्थिति में भी ऋण वसूली अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के अंतर्गत निर्धारित *मूल्याधारित* न्यायालय शुल्क, एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन प्रस्तुत आवेदन पर देय होगा।

श्री एन.सी. साहनी, जिनकी सहायता श्री पंकज गुप्ता, उधारकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई, ने तर्क दिया कि संशोधन अधिनियम 30, 2004 द्वारा दिनांक 11.11.2004 से प्रभावी संशोधन के परिणामस्वरूप, एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) के अंतर्गत बैंक अथवा वित्तीय संस्थान द्वारा आरंभ की गई कार्यवाही से व्यथित व्यक्तियों को एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर न्यायनिर्णयन प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। यह तर्क दिया गया कि एनपीए अधिनियम की धारा 40(1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्रीय सरकार ने "वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन (कठिनाइयों का निवारण) आदेश, 2004" जारी किया, जिसके द्वारा अपीलों के प्रस्तुतिकरण हेतु शुल्क अधिरोपित करने का प्रावधान किया गया। यह आदेश दिनांक 06.04.2004 को जारी किया गया था। यह भी इंगित किया गया कि दिनांक 08.04.2004 को इस न्यायालय ने *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) वाद में अपना निर्णय प्रदान किया था। वर्ष 2004 के आदेश के खंड 3 में यह उपबंधित है कि एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली अधिकरण में अपील प्रस्तुत करने हेतु देय शुल्क, ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम की धारा 19 सहपठित ऋण वसूली अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने हेतु देय शुल्क के अनुरूप *आवश्यक परिवर्तनों*

सहित देय होगा। विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि संशोधन अधिनियम 30, 2004, जो 11.11.2004 से प्रभावी हुआ, द्वारा एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) में संशोधन किए जाने के पश्चात् केंद्रीय सरकार द्वारा दिनांक 06.04.2004 को जारी उक्त आदेश अप्रभावी हो गया है, क्योंकि संशोधित प्रावधान के अनुसार उधारकर्ता को धारा 13(4) के अंतर्गत की गई कार्यवाही को चुनौती देने हेतु ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करना होता है, जिसके साथ निर्धारित शुल्क का भुगतान भी किया जाना अपेक्षित है। विद्वान अधिवक्ताओं ने यह भी तर्क दिया कि संशोधित धारा 17(1) में एक परंतुक जोड़ा गया है, जिसमें यह उपबंधित है कि उधारकर्ता द्वारा आवेदन प्रस्तुत किए जाने हेतु भिन्न-भिन्न शुल्क निर्धारित किए जा सकते हैं। उन्होंने आगे कहा कि धारा 2(स) में "विहित" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उसका अर्थ एनपीए अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित किया गया है। यह तर्क दिया गया कि *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) के निर्णय में इस न्यायालय ने यह धारित किया था कि धारा 17 के अधीन उपलब्ध उपचार अपीलीय उपचार नहीं है। अतः संशोधन से पूर्व की व्यवस्था के अधीन अपील प्रस्तुत करने हेतु शुल्क निर्धारित करने वाला वर्ष 2004 का आदेश, 11.11.2004 के पश्चात् प्रस्तुत किए गए आवेदनों पर लागू नहीं किया जा सकता। विद्वान अधिवक्ताओं ने यह भी तर्क दिया कि एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) तथा ऋण वसूली अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 को आधार बनाकर *मूल्याधारित* न्यायालय शुल्क की मांग नहीं की जा सकती, विशेषतः 11.11.2004 के पश्चात्, क्योंकि जैसा कि *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) के निर्णय में कहा गया है, धारा 17(1) के अधीन उपचार मूल अधिकारिता का उपचार है, अपीलीय अधिकारिता का नहीं। यह भी तर्क दिया गया कि 11.11.2004 के पश्चात् शुल्क केवल नियमों द्वारा अधिरोपित किया जा सकता था, न कि कठिनाइयों के निवारण संबंधी आदेश द्वारा।

हम उपर्युक्त तर्कों में कोई सार नहीं पाते, निम्नलिखित कारणों से—

यह सत्य है कि एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) *अन्य बातों के साथ* यह उपबंधित करती है कि धारा 13(4) के अंतर्गत की गई कार्यवाही से व्यथित उधारकर्ता, विहित शुल्क सहित, संबंधित क्षेत्राधिकार वाले ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। यह भी सत्य है कि धारा 17(1) का हाशिया-शीर्षक अपील का अधिकार है। हमारे मत में धारा 17(1) का हाशिया-शीर्षक उसके वास्तविक पाठ और आशय को नियंत्रित नहीं कर सकता। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, धारा 17(1) स्पष्ट रूप से यह उपबंधित करती है कि धारा 13(4) में वर्णित किसी भी उपाय से व्यथित उधारकर्ता ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। *मार्डिया केमिकल्स* (उपरोक्त) के निर्णय में इस न्यायालय ने कहा है कि एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण मूल अधिकारिता का प्रयोग करता है। हमारे विचार में शुल्क अधिरोपण के प्रश्न पर प्रयुक्त शब्दावली से कोई अंतर नहीं पड़ता। वास्तव में धारा 17(1) का परंतुक यह इंगित करता है कि उधारकर्ता द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने हेतु विभिन्न प्रकार के शुल्क निर्धारित किए जा सकते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। धारा 13(4) के अंतर्गत किए जाने वाले विभिन्न उपाय, जैसे व्यवसाय के प्रबंधन का अधिग्रहण अथवा प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा वित्तीय परिसंपत्तियों का कब्जा ग्रहण करना, भिन्न प्रकृति के हैं और उन पर भिन्न शुल्क लगाया जा सकता है। प्रत्येक उपाय के संबंध में उधारकर्ता-आवेदक से पृथक शुल्क लिया जा सकता है और उसी उद्देश्य से भिन्न-भिन्न शुल्क निर्धारित किए जा सकते हैं। उक्त परंतुक यह भी इंगित करता है कि धारा 17(1) के अधीन अधिकरण मूल अधिकारिता का प्रयोग करता है और इसलिए शुल्क के संदर्भ में मूल अथवा अपीलीय अधिकारिता की शब्दावली का कोई विशेष महत्व नहीं है। दूसरे, एनपीए अधिनियम की धारा 40 के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा जारी वर्ष 2004 के आदेश में यह उपबंधित किया गया है कि धारा 17(1) के अधीन ऋण वसूली अधिकरण में अपील प्रस्तुत करने हेतु देय शुल्क, ऋण वसूली अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1993 के नियम 7 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने हेतु देय शुल्क के अनुरूप *आवश्यक*

परिवर्तनों सहित होगा। *आवश्यक परिवर्तनों सहित* शब्द यह इंगित करता है कि उधारकर्ता द्वारा एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) के अधीन आवेदन प्रस्तुत करते समय देय शुल्क का निर्धारण करने हेतु एक मापदंड अपनाया गया है, जब वह धारा 13(4) के अधीन प्रतिभूत ऋणदाता द्वारा की गई कार्यवाही को चुनौती देता है। अंततः, हम उधारकर्ताओं की इस दलील में भी कोई सार नहीं पाते कि चूँकि 11.11.2004 के पश्चात् नियमों द्वारा शुल्क निर्धारित नहीं किया गया, इसलिए दिनांक 06.04.2004 के आदेश के आधार पर शुल्क अधिरोपित नहीं किया जा सकता। उधारकर्ताओं का तर्क यह है कि संशोधित धारा 17(1) आवेदन हेतु शुल्क विहित किए जाने का प्रावधान करती है और चूँकि 11.11.2004 के पश्चात् एनपीए अधिनियम के अधीन कोई नियम नहीं बनाया गया, इसलिए दिनांक 06.04.2004 का आदेश, जो उनके अनुसार संशोधन अधिनियम 30/2004 के लागू होने के बाद समाप्त हो गया, शुल्क अधिरोपित करने का आधार नहीं बन सकता।

उपर्युक्त अंतिम तर्क में भी हमें कोई सार दिखाई नहीं देता। *मदेवा उपेन्द्र सिनाई एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य*, [1975] 3 एससीसी 765 के वाद में विचारणीय प्रश्नों में से एक यह था कि क्या केंद्रीय सरकार, आयकर अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त कठिनाइयों के निवारण संबंधी शक्ति जो एनपीए अधिनियम की धारा 40 के समान है का प्रयोग करते हुए अधिनियम में विद्यमान किसी न्यूनता अथवा रिक्ति की पूर्ति करने के लिए सक्षम है। उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

> "36. इससे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं : (1) क्या यह विनियमन के खंड (7) के आशय में 'कठिनाई' है? (2) क्या केंद्रीय सरकार, उक्त खंड के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, इस प्रकार की किसी न्यूनता अथवा विधिक रिक्ति (Casus Omissus) की पूर्ति करने के लिए सक्षम है?

38. विचाराधीन बिंदुओं की समुचित समझ के लिए 'कठिनाइयों के निवारण संबंधी उपबंध' की प्रकृति एवं उद्देश्य तथा उसके द्वारा सरकार को प्रदत्त शक्ति का सामान्य अवलोकन आवश्यक है।

39. कल्याणकारी लोकतांत्रिक राज्य की तीव्र गति से बढ़ती हुई जिम्मेदारियों के साथ तालमेल बनाए रखने के लिए विधायिका को शीघ्रता में बड़ी मात्रा में विधि-निर्माण करना पड़ता है, जिसकी विशालता प्रायः उसकी जटिलता के समानुपाती होती है। अत्यधिक दबाव की परिस्थितियों में, जब विधायिका के समय तथा प्रारूपकार की क्षमता एवं धैर्य पर भारी मांग होती है, तब उन सभी परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगाना लगभग असंभव हो जाता है जिनसे निपटने के लिए कोई अधिनियम बनाया जाता है, अथवा उसके क्रियान्वयन में स्थानीय परिस्थितियों अथवा स्थानीय विधियों के कारण उत्पन्न होने वाली सभी कठिनाइयों का पूर्वाभास करना संभव नहीं होता। यह विशेष रूप से तब सत्य है जब संसद ऐसे विधि-निर्माण का दायित्व ग्रहण करती है जो राज्य की सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों को नई दिशा प्रदान करता है अथवा भारत संघ में नव-विलयित क्षेत्रों में विद्यमान भारतीय विधियों का विस्तार करता है। विधायिका प्रत्येक छोटी-बड़ी कठिनाई के निवारण हेतु बार-बार संशोधन प्रक्रिया अपनाने की आवश्यकता से बचने के लिए कभी-कभी कार्यपालिका को अत्यंत सीमित शक्ति प्रदान करना उपयुक्त समझती है, जिससे वह अधिनियम के मूल स्वरूप को प्रभावित किए बिना उसमें केवल लघु अनुकूलन तथा परिधीय समायोजन कर सके और उसके प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित कर सके। इसी कारण 'कठिनाइयों के निवारण संबंधी उपबंध', जिसे कभी तिरस्कारपूर्वक 'हेनरी अष्टम उपबंध' कहा जाता था, स्वतंत्रता-उपरांत अनेक भारतीय अधिनियमों में एक व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया है।

40. अब हम विनियमन के खंड (7) की ओर आते हैं। यह स्पष्ट है कि इसके द्वारा प्रदत्त शक्ति न तो अनियंत्रित है और न ही निरंकुश। यह कठोर रूप से सीमित एवं शर्तबद्ध है। 'कठिनाई' का अस्तित्व अथवा उसका उत्पन्न होना इस शक्ति के प्रयोग की *अनिवार्य पूर्वशर्त* है। यदि यह पूर्वशर्त वस्तुनिष्ठ तथ्य के रूप में विद्यमान नहीं है, तो इस खंड के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग किया ही नहीं जा सकता। पुनः, जिस 'कठिनाई' का इस खंड में उल्लेख है, वह अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी बनाने में उत्पन्न हुई कठिनाई होनी चाहिए, न कि कोई बाह्य अथवा असंबद्ध कठिनाई। इसके अतिरिक्त, केंद्रीय सरकार केवल उसी सीमा तक शक्ति का प्रयोग कर सकती है जितना अधिनियम को लागू करने अथवा प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हो और उससे अधिक नहीं। वह अधिनियम की तीक्ष्णताओं को कुछ हद तक समतल कर सकती है, उसकी विसंगतियों को दूर कर सकती है अथवा उसकी कार्यशीलता सुनिश्चित करने के लिए लघु अस्पष्टताओं को समाप्त कर सकती है; किन्तु वह अधिनियम की मूल संरचना एवं प्रमुख विशेषताओं को परिवर्तित, विकृत अथवा क्षतिग्रस्त नहीं कर सकती। किसी भी स्थिति में वह कठिनाई के निवारण के नाम पर अधिनियम की योजना अथवा उसके आवश्यक उपबंधों में परिवर्तन नहीं कर सकती।

41. उपर्युक्त सिद्धांत, विशेषकर उस 'कठिनाई' के बीच के भेद को, जो 'कठिनाई निवारण उपबंध' के दायरे में आती है और जो उसके बाहर रहती है, *स्ट्रॉ प्रोडक्ट्स* वाद, [1968] 2 एससीआर 1 में विचाराधीन वर्ष 1949 के आदेश तथा वर्ष 1962 के आदेश के आक्षेपित उपबंध से पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया गया है। वर्ष 1922 के अधिनियम के संगत उपबंध के संदर्भ को छोड़कर, वर्ष 1949 के आदेश की भाषा वर्तमान वाद में वर्ष 1970 के आदेश संख्या 2 के खंड (3) के अनाक्रमित भाग के समान थी। वर्ष 1949 का आदेश उस कठिनाई के निवारण से संबंधित था, जो वर्ष 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(vi) के परंतुक (ग) तथा धारा 10(5)(ख) के

उपबंधों को प्रभावी बनाने में उत्पन्न हुई थी, जो क्रमशः वर्ष 1961 के अधिनियम की धारा 34(2)(i) तथा धारा 43(6)(ख) के अनुरूप हैं। यह कठिनाई इसलिए उत्पन्न हुई थी क्योंकि विलयित राज्यों के आयकर कानून भारतीय आयकर अधिनियम द्वारा निरसित नहीं किए गए थे, बल्कि 'विलयित राज्यों पर कराधान विधियों का विस्तार तथा संशोधन अधिनियम, 1949 (अधिनियम संख्या 67, वर्ष 1949)' द्वारा निरसित किए गए थे। इसके परिणामस्वरूप, विलयित राज्यों के कानूनों के अधीन *वास्तव में अनुमत* मूल्यह्रास को वर्ष 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(vi) के परंतुक (ग) में उल्लिखित समग्र मूल्यह्रास भत्ते अथवा धारा 10(5)(ख) के अधीन लिखित अवमूल्यित मूल्य की गणना में सम्मिलित नहीं किया जा सकता था। यदि इस कठिनाई का निवारण नहीं किया गया होता, तो असंगत एवं विसंगतिपूर्ण परिणाम उत्पन्न होते। पूर्ववर्ती वर्ष से पहले अर्जित परिसंपत्तियों का लिखित अवमूल्यित मूल्य, राज्य कानूनों के अधीन पूर्व में अनुमत मूल्यह्रास की कटौती किए बिना, परिसंपत्तियों की मूल लागत के आधार पर निर्धारित किया जाता। इससे विलयित राज्यों के निर्धारियों को ऐसा लाभ प्राप्त होता, जो वर्ष 1922 के अधिनियम की धारा 10 की *योजना के प्रतिकूल होता तथा समग्र रूप से परिसंपत्तियों की मूल लागत से भी अधिक हो जाता*।

42. वर्ष 1949 के आदेश द्वारा उक्त कठिनाई का निवारण कर दिया गया। अपने स्पष्ट शब्दों में उसने इससे अधिक कुछ नहीं किया कि यह निर्देश दिया कि यदि किसी विलयित राज्य के आयकर कानूनों के अधीन *वास्तव* में मूल्यह्रास की *अनुमति* दी गई थी, तो परिसंपत्तियों के लिखित अवमूल्यित मूल्य का निर्धारण करते समय उसे ध्यान में रखा जाएगा। मूल्यह्रास तथा लिखित अवमूल्यित मूल्य से संबंधित अधिनियम के मूल एवं आवश्यक उपबंधों का स्थान ग्रहण करने अथवा उनके

सारतत्त्व में परिवर्तन करने के बजाय, उसने उन्हें प्रभाव, जीवन तथा अर्थ प्रदान किया।"

मदेवा उपेन्द्र सिनाई में इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय के आलोक में हमारा मत है कि वर्तमान वाद में वर्ष 2004 का आदेश एक न्यूनता, अर्थात् शुल्क अधिरोपण की व्यवस्था, की पूर्ति के उद्देश्य से जारी किया गया था। ऐसे शुल्क के अधिरोपण से एनपीए अधिनियम की प्रकृति अथवा परिधि में कोई परिवर्तन नहीं होता। यह निर्विवाद है कि वर्ष 2004 का आदेश एनपीए अधिनियम के अधिनियमन के पश्चात् जारी किया गया था। यद्यपि अधिनियम 30/2004 द्वारा एनपीए अधिनियम की धारा 17(1) में कुछ संशोधन किए गए, तथापि दिनांक 6.4.2004 का आदेश संशोधित अधिनियम की योजना को किसी भी प्रकार परिवर्तित नहीं करता। वह केवल विद्यमान न्यूनता की पूर्ति करता है। अतः वर्ष 2004 का आदेश, अधिनियम 30/2004 के प्रवर्तन के पश्चात् भी, तथा एनपीए अधिनियम की धारा 2(स) के अधीन नियम बनाए जाने तक, प्रभावी बना रहेगा।

निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व, उपर्युक्त विवेचन के आलोक में इस न्यायालय के निम्नलिखित दो निर्णयों का विश्लेषण करना आवश्यक है।

आन्ध्र प्रदेश राज्य वित्तीय निगम बनाम मेसर्स गार री-रोलिंग मिल्स एवं अन्य (उपरोक्त) में यह प्रतिपादित किया गया कि राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 29 अधिकारों तथा उपचारों के साथ-साथ उनके प्रवर्तन की प्रक्रिया भी प्रदान करती है। यह अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। निगम के लिए यह खुला है कि वह वहाँ विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करते हुए धारा 29 के अधीन कार्यवाही कर चूककर्ता से अपनी देय राशि वसूल करे। धारा 29 के उपबंधों का आश्रय लेते समय निगम को अपने अधिकारों के प्रवर्तन हेतु न्यायालय की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। उक्त निर्णय में आगे यह भी कहा गया कि धारा 31 ऐसी स्थिति से निपटने हेतु अधिनियमित की गई है, जहाँ कोई औद्योगिक उपक्रम किसी अनुबंध का उल्लंघन करते हुए ऋण अथवा अग्रिम की अदायगी में व्यतिक्रम करता है

अथवा निगम तत्काल पुनर्भुगतान की मांग करता है और चूककर्ता ऐसा करने में असफल रहता है। इस न्यायालय ने इसलिए यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 31, निर्णय से पूर्व डिक्री के निष्पादन में संपत्ति के कुर्की हेतु आवेदन के समान प्रकृति का सारभूत उपचार प्रदान करती है। धारा 29 और धारा 31 के संयुक्त पठन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि पुनर्भुगतान में व्यतिक्रम अथवा अनुबंध के उल्लंघन की स्थिति में निगम के पास चूककर्ता के विरुद्ध दो उपचार उपलब्ध हैं—एक धारा 29 के अधीन और दूसरा धारा 31 के अधीन। इस न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि "धारा 29 के उपबंधों के प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दावली के धारा 31 में प्रयुक्त होने के कारण, राज्य वित्तीय निगम अधिनियम के संदर्भ में उपचारों के चयन का सिद्धांत लागू नहीं होगा। तथापि यह अवश्य कहा गया कि निगम के पास प्रारंभिक स्तर पर यह चयन करने का अधिकार है कि वह धारा 29 अथवा धारा 31 में से किसके अधीन कार्यवाही करे, परंतु यदि वह धारा 31 का आश्रय लेता है तो उसके धारा 29 के अधिकार समाप्त नहीं होते। निगम किसी भी अवस्था में धारा 31 की कार्यवाही का परित्याग कर सकता है। यह भी कहा गया कि धारा 31 के अधीन पारित आदेश धन डिक्री नहीं होता, अतः धारा 31 का आश्रय लेने मात्र से निगम धारा 29 के अंतर्गत उपलब्ध अधिकारों का उपयोग करने से वंचित नहीं होता। यह भी अवलोकित किया गया कि ऋणी समता का दावा नहीं कर सकता।

हमारे मत में *आन्ध्र प्रदेश राज्य वित्तीय निगम* (उपरोक्त) का निर्णय वर्तमान वाद पर लागू नहीं होता। राज्य वित्तीय निगम अधिनियम में धारा 31 में "धारा 29 के उपबंधों के प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी कारण उक्त निर्णय में कहा गया कि धारा 29 की परिधि धारा 31 की अपेक्षा अधिक व्यापक है, क्योंकि धारा 31 केवल निर्णय से पूर्व कुर्की से संबंधित है। धारा 29 और धारा 31 एक ही अधिनियम में निहित हैं तथा धारा 31, धारा 29 के क्षेत्र से पृथक किए गए सीमित क्षेत्र में कार्य करती है। इसके विपरीत, वर्तमान वाद में हमारे समक्ष दो पृथक अधिनियम हैं, अर्थात् बैंकों और वित्तीय

संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली संबंधी अधिनियम, 1993 तथा एनपीए अधिनियम, 2002। इसके अतिरिक्त, ऋण वसूली अधिनियम, 1993 बैंक/वित्तीय संस्था द्वारा परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी अथवा प्रतिभूतिकरण कंपनी को परिसंपत्ति के समनुदेशन का प्रावधान नहीं करता। यह केवल एनपीए अधिनियम के अधीन ही संभव है। एनपीए अधिनियम के अधीन परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी अथवा प्रतिभूतिकरण कंपनी परिसंपत्ति का प्रबंधन तथा पुनर्निर्माण कर सकती है। वह ऋणदाता बैंक/वित्तीय संस्था के स्थान पर भी आ सकती है। इसलिए एनपीए अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध उपचार एक अतिरिक्त उपचार है, जैसा कि धारा 37 में स्पष्ट किया गया है। एनपीए अधिनियम, ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के अतिरिक्त है। अतः राज्य वित्तीय निगम अधिनियम की योजना, ऋण वसूली अधिनियम, 1993 तथा एनपीए अधिनियम की समन्वित योजना से भिन्न है। इन परिस्थितियों में *आन्ध्र प्रदेश राज्य वित्तीय निगम* (उपरोक्त) का निर्णय वर्तमान वाद पर लागू नहीं होता।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मस्तान एवं एक अन्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने यह कहा कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 ("एमवी अधिनियम") की धारा 167 की भाषा तथा उपचारों के चयन के सिद्धांत को देखते हुए, जो दावेदार (कर्मकार) कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन कार्यवाही करने का विकल्प चुनता है, वह मोटर वाहन अधिनियम के उपबंधों का आश्रय नहीं ले सकता, सिवाय उस सीमा तक जो धारा 167 में विनिर्दिष्ट है। यह निर्णय भी वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होता। जैसा कि *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मस्तान* (उपरोक्त) में कहा गया, मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 स्वयं वैधानिक विकल्प प्रदान करती है कि जहाँ मृत्यु अथवा शारीरिक क्षति के कारण मोटर वाहन अधिनियम तथा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 दोनों के अधीन प्रतिकर का दावा उत्पन्न होता है, वहाँ प्रतिकर पाने का अधिकारी व्यक्ति अध्याय 10 के उपबंधों के प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, दोनों अधिनियमों में से किसी एक के अधीन प्रतिकर का दावा कर सकता है, किन्तु दोनों के अधीन नहीं। वर्तमान वाद में ऐसा कोई उपबंध

विद्यमान नहीं है। अतः *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मस्तान* (उपरोक्त) का निर्णय भी लागू नहीं होता।

मेसर्स ट्रांसकोर की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के.एस. विश्वनाथन ने एनपीए अधिनियम की धारा 17 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने हेतु समय की प्रार्थना की है। उन्होंने इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.9.2005 को पारित अंतरिम आदेश, जिसके द्वारा नीलामी विक्रय की पुष्टि पर रोक लगाई गई थी, को जारी रखने का भी अनुरोध किया है। चूँकि वाद इस न्यायालय के समक्ष अपील में लंबित था, अतः हम सिविल अपील संख्या 3228/2006 में पारित निर्णय की तिथि से चार सप्ताह की अवधि तक उक्त अंतरिम आदेश का विस्तार करते हैं।

तदनुसार, हम उपर्युक्त तीनों प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक रूप में, अर्थात् बैंकों/वित्तीय संस्थाओं (प्रतिभूत ऋणदाताओं) के पक्ष में देते हैं। परिणामस्वरूप, उधारकर्ताओं द्वारा दायर अपीलें/अंतरिम आवेदन निरस्त किए जाते हैं, जबकि बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा दायर अपीलें/अंतरिम आवेदन स्वीकृत किए जाते हैं। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

एन. जे. बैंक/एफ. आई. की अपील/अंतर्वर्ती आवेदन अनुमति दी गई

उधारकर्ता की अपील/अंतर्वर्ती आवेदन खारिज कर दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।